कैनेडा से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका

Year 4, Issue 15
July-Sep. 2007

# वसुधा

VASUDHA A CANADIAN PUBLICATION

EDITOR - PUBLISHER : SNEH THAKORE

संपादन व प्रकाशन
स्नेह ठाकुर

वर्ष ४ - अंक १५, जुलाई-सितम्बर २००७

# वसुधा

## संपादन व प्रकाशन : स्नेह ठाकुर


| शीर्षक | रचयिता | पृष्ठ |
|---|---|---|
| संपादकीय | | २ |
| हिन्दी अभियान, बदलते संदर्भ | अनिल जोशी | ३ |
| हिन्दी के बढ़ते चरण | डॉ. हरिकृष्ण प्रसाद गुप्त अग्रहरि | ४ |
| भारत देश हमारा | डॉ. सुशीला गुप्ता | ५ |
| देशप्रेम के नशे में | नीरज व्यास | ६ |
| राष्ट्रीय सम्पत्ति | महेश राजा | ७ |
| रोटी | डॉ. शिव चौहान 'शिव' | ८ |
| मुरब्बी | विष्णु प्रभाकर | ९ |
| चलो चलें हम मानसरोवर | सुभाष ॠतुज | १३ |
| टैगोर : जीवन की एक झलक | राजीव कुमार भाटिया | १४ |
| १८५७ गदर नहीं, जन-क्रांति | नरेश शांडिल्य | १६ |
| जन-क्रांति | आचार्य संदीप कुमार त्यागी 'दीप' | १७ |
| बाल पत्रिकाओं की भूमिका और दायित्व | देवेन्द्र कुमार देवेश | १८ |
| देखें पीछे नहीं चलते जाएँ | अक्षय गोजा | २२ |
| फाँसी के दिन आप न आना बेबे जी.... कहा था भगत सिंह ने माँ से | नरेश भारतीय | २३ |
| देश-प्रेम | स्नेह ठाकुर | २५ |
| आवाज़ | बनाफर चन्द्र | २६ |
| प्रेम कथा | प्रो. प्रेम मोहन लखोटिया | ३२ |
| जापान और भारत को जो ने वाले दृढ़ सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक सम्बन्ध | यासुकुनी एनोंकी | ३३ |
| सुनो | पाराशर गौ | ३७ |
| वापसी | गुणानन्द थपलियाल | ३८ |
| यात्रा | डॉ. दामोदर ख से | ४० |
| आदि शंकराचार्य | डॉ. राम दास चौधरी | ४१ |
| कामना | सुशील कुमार त्यागी 'अमित' | ४४ |


रचनाओं में निहित विचार तथा मन्तव्य रचनाकारों के निजी विचार तथा मन्तव्य हैं। 'वसुधा' रचनाकारों के विचारों के लिए उत्तरदायी नहीं है। प्रकाशक की आज्ञा बिना कोई रचना किसी प्रकार उद्धृत नहीं की जानी चाहिए। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।

रचनाएँ भेजने के लिए सम्पर्क पता :
16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada. TEL. 416-291-9534

वार्षिक शुल्क Annual subscription..........$25.00

डाक द्वारा By Mail................................$35.00

Website: http://ca.geocities.com/sneh.thakore/Home.html

e-mail: sneh.thakore@yahoo.ca

# संपादकीय (अंक १५, जुलाई-सितम्बर २००७)

१० जनवरी १९७५ को नागपुर से चला प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन का कारवाँ कई सोपानों पर चढ़ता हुआ १३ जुलाई को आठवें विश्व हिन्दी सम्मेलन के रूप में न्यूयार्क पहुँच रहा है। विश्व में बसे सभी भारतवंशियों एवं हिन्दी प्रेमियों की कामना यही है कि यह कारवाँ कुछ और तीव्र गति से अपने गन्तव्य की ओर बढ़े। इसकी गति में और भी तीव्रता आये।

भाषा संस्कृति की वाहिनी है। साथ ही यह भारतवासियों, भारतवंशियों व हिन्दी-प्रेमी रूपी मनकों को एक माला में पिरोने वाला मज़बूत धागा है। भाषा उन्हें एक सूत्र में बाँधती है। विश्व का शायद ही कोई ऐसा देश हो जहाँ हिन्दी प्रेमी न हों। भाषा के प्रति यह प्रेम ही सफलता की कुंजी है, आधार-शिला है।

प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन के प्रमुख मन्तव्यों में से एक मन्तव्य था, संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी को आधिकारिक भाषा के रूप में स्थान दिलाना, जो अभी तक सम्पन्न नहीं हुआ है।

नागपुर के प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन के आयोजन के बाद दूसरा सम्मेलन १९७६ में पोर्ट लुई (मॉरीशस), तीसरा १९८३ में नई दिल्ली, चौथा १९९३ में पुनः पोर्ट लुई (मॉरीशस), पाँचवाँ १९९६ में पोर्ट ऑफ स्पेन (त्रिनिदाद एवं टोबैगो), छठा १९९९ में लंदन (इंग्लैंड) और सातवाँ २००३ में पारामारिबो (सूरीनाम) में आयोजित किया गया था। अब आठवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन न्यूयार्क में १३ से १५ जुलाई तक आयोजित होने जा रहा है।

सयुंक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी को आधिकारिक भाषा के रूप में तो हम अभी तक स्थान नहीं दिला पाये हैं, अभी तक हम वहाँ नहीं पहुँचे हैं, पर उसकी नगरी में तो हम पहुँच ही गये हैं। अब देखना है कि बाकी की दूरी हम कब तक तय कर पाते हैं।

जहाँ चाह वहाँ राह। अडिग संकल्प भय नहीं मानता। इरादे नेक हों तो रुकावटें स्वयं ही मुँह फेर लेती हैं। अतः आइये, हम इस आठवें विश्व हिन्दी सम्मेलन के आगमन पर, प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन में हिन्दी के उत्थान के प्रति किये गये संकल्प की पुनरावृत्ति करें, उसमें नव प्राण फूँकें, और उस समय तक कर्मठता से कार्यरत रहें जब तक मंजिल न मिल जाये।

पिछले माह 'सद्भावना हिन्दी साहित्यिक संस्था' के सदस्यों का एक काव्य-संकलन 'काव्य-वृष्टि' प्रकाशित हुआ है। इसके कविवृंद हैं - दीपमाला वर्मा, पाराशर गौ , सरन घई, स्नेह ठाकुर, संदीप कुमार त्यागी, सुरेन्द्र पाठक एवं लता पाण्डेय। इस काव्य-संकलन 'काव्य-वृष्टि' में न केवल कवि के रूप में सम्मिलित होने का सौभाग्य मुझे मिला वरन् 'काव्य-वृष्टि' के संपादन का सौभाग्य भी मुझे प्रदान किया गया है। इस संकलन की कविताएँ विभिन्न रसों की बौछारों से मन-प्राण अभिसिंचित करती हैं। 'काव्य-वृष्टि' के कविवृंद हिन्दी के प्रचार प्रसार के लिए प्रयासरत हैं, कटिबद्ध हैं।

'सद्भावना हिन्दी साहित्यिक संस्था' की अध्यक्षा होने के नाते यह मेरे लिए और भी गौरव व प्रसन्नता का विषय है कि इसके इन सदस्यों ने आपस में जु  संगठित रूप से माँ सरस्वती, माँ भारती तथा मातृभाषा की अराधना हेतु संलग्न हो एक पावन-पुनीत यज्ञ-वेदी की संरचना की है। यद्दपि कि हाथ की हर उँगली स्वयं में महत्वपूर्ण होती है, पर जब वही पाँचों उँगलियाँ मुट्ठी का आकार ग्रहण करती हैं तो मुष्टिका अत्यधिक शक्तिशाली व सक्षम हो जाती है।

वैसे तो ये सभी कवि/कवयित्री व्यक्तिगत रूप से अलग-अलग माँ सरस्वती की पूजा-अर्चना में कालान्तर से लगे हुए हैं, पर मिल कर जुटने का यह उनका प्रथम प्रयास है जो हर दृष्टि से सराहनीय है। व्यष्टि से समष्टि की ओर जाना सदैव ही मंगलकारी है, समाज के लिए कल्याणकारी है। जु  कर किसी भी कार्य को आगे बढ़ाने का प्रयास कार्यक्षमता को कई गुना बढ़ा देता है। अकेलेपन की शक्ति की अपेक्षा संगठित शक्ति कहीं ज्यादा प्रभावशाली होती है। यह सर्वविदित है कि अकेला चना भा  नहीं फो  सकता। यद्यपि कि हर व्यक्ति की अपनी अहमियत होती है, पर संगठित रूप की कार्यक्षमता कहीं ज्यादा विकास का मार्ग प्रशस्त करती है।

हिन्दी के प्रति शुभकामनाओं को मन-प्राण मे सँजोये,

सस्नेह,

स्नेह ठाकुर

# हिन्दी अभियान, बदलते सन्दर्भ

**अनिल जोशी**

वर्ष १९८९ में एक बहुत ब` हिन्दी सम्मेलन का आयोजन हुआ था। सम्मेलन की विशेषता यह थी कि उसमें चार से अधिक प्रदेशों के मुख्यमंत्रियों ने भाग लिया था। ऐसा लगता था कि हिन्दी भाषी प्रदेशों के राजनीतिक प्रमुख हिन्दी के लिए कोई संयुक्त रणनीति बनाएँगे।

सम्मेलन के एक सत्र में मुझे भी वक्ता के रूप में बोलने का मौका मिला था। उस सत्र की अध्यक्षता जार्ज फर्नांडिस कर रहे थे। सम्मेलन कई अर्थों में सफल था। पर उसका एक सत्र मन में मटमैली स्मृतियाँ छो  गया। उस सत्र में स्वामी अग्निवेश वक्ता थे। उन्होंने अँग्रेजी के विरुद्ध जोरदार व्याख्यान दिया और स्थिति यह बन गई कि जिस स्टेडियम में सम्मेलन का आयोजन किया गया था उसमें लगे अँग्रेजी के बोर्डों को उखा ने का आह्वान किया गया। देखते-देखते श्रोता हु दंगी भी  में बदल गये और तो -भो  होने लगी।

हिन्दी के आंदोलन के असफल होने की वजह वैसे ही बिना सिर-पैर के विचारों और वक्तव्यों में देखी जा सकती है। इसका अर्थ है कि संकल्पना के स्तर पर, विचार के स्तर पर गहन चिंतन उस समय नहीं किया गया या जो विचार किया वो सतही, एकआयामी और भी वादी था। यहाँ पर यह विचार करने की आवश्यकता है कि लोहिया या उनके अनुयायियों के आग्रह के बावज़ूद हिन्दी को उसका उचित स्थान क्यों नहीं मिला।

लगभग इसी समय हिन्दी आंदोलन अन्य स्तरों पर भी चल रहा था। श्यामरुद्र पाठक ने आई.आई.टी. जैसे इलीट संस्थान में हिन्दी में शोध प्रबंध प्रस्तुत करने का आग्रह करते हुए धरना और भूख ह ताल की। उनकी दशा एक बार तो काफी बिग  गयी थी। परन्तु अन्ततः उन्हें सफलता मिली।

संघ लोक सेवा आयोग के सामने पुष्पेन्द्र चौहान और राजकरण सिंह ने वर्षों आंदोलन चलाया। उस आंदोलन में हमने भी यथासंभव सहयोग दिया। बलदेव वंशी भी उसमें सक्रिय हुए। धरना इतना लम्बा हुआ कि संघ लोक सेवा आयोग के सामने लगा वो धरने का टेंट संघ लोक सेवा आयोग का ही हिस्सा लगने लगा था। आधी-अधूरी सफलताओं के बाद वह आंदोलन समाप्त हुआ। यह दौर था कि वैश्वीकरण, निजीकरण की बातें शुरू हो चुकी थीं और हिंदी के आग्रह गये ज़माने की बातें लग रहे थे।

अब सवाल यह है कि वर्तमान समय में हिन्दी के अभियान या आंदोलन का क्या स्वरूप हो? पहली बात, क्या उसकी कोई ज़रूरत है। जब अँग्रेजी पढ़े-लिखे भारत के युवाओं ने पश्चिम में अपना झंडा गा  दिया और मंटीनेशनल कंपनियाँ लाइन लगा कर भारत में आ गई हैं तो हिन्दी की क्या ज़रूरत? भारतीय भाषाओं का क्या महत्व? हम सब क्वीन विक्टोरिया की भाषा अपनाएँ और सब कौए से कोयल बन जाएँ। यह सारी दुनिया को एक-सा बनाने की पश्चिमी कवायद है। यह संस्कृतियों, शास्त्रीय साहित्य, लोक परम्पराओं, लोक संस्कृति को शवघर में डाल ज़श्न मनाने जैसा है। यह अपने इतिहास और परंपराओं को नये तरीके से, हेय तरीके से, देखने जैसा है। दुर्भाग्य है कि हम अपना इतिहास अँग्रेज़ों के बनाए चश्मे से पढ़ने लगे हैं। तो मतलब, भाषा का सवाल अभी भी मौज़ूद है। पर उसे कैसे आगे बढ़ाया जाए।

आज वैश्वीकरण के दौर में दुनिया के प्रायः सभी देश द्विभाषी हो चुके हैं, बहुभाषी हो चुके हैं। इसलिए अँग्रेजी का विरोध, और केवल विरोध के लिए विरोध, उसके कारण प्राप्त उपलब्धियों का नकार, उचित नहीं है। इस स्थिति को नकारना वस्तुस्थिति से मुँह मो ना है। इसलिए सबसे पहले हमें द्विभाषिकता, बहुभाषिकता की स्थिति को स्वीकार करना होगा। हमारे आग्रह समाज और देश के हितों व समय की धारा के प्रतिकूल न हों, यह ध्यान रखना होगा।

समय बदल गया है, आज हिन्दी को धरने और आंदोलन की नहीं, बल्कि आई.टी. क्रांति की ज़रूरत है। आज अनुवाद के माध्यम से आदान-प्रदान की ज़रूरत है। हिन्दी को सरकारी औपचारिकताओं और आडम्बर से मुक्त करने की आवश्यकता है। अँग्रेजी, भारतीय भाषाओं, उर्दू आदि से मुक्त आदान-प्रदान की ज़रूरत है।

हिन्दी में यूनिकोड का आगमन किसी क्रांति से कम नहीं है। क्या करो ों युवाओं को कम्प्यूटर पर हिंदी में काम करने, संवाद करने की सुविधा प्रदान करना, क्या किसी राजनीतिक उपलब्धि से कम महत्वपूर्ण है?

हिन्दी सेवियों को साहित्य से शक्ति तो लेनी है पर उस तक स्वयं को सीमित नहीं कर लेना है। हिंदी को साहित्य और उसमें भी कविता तक सीमत कर सोचने से कुछ नहीं होगा। हिन्दी को समाज और उसकी आवश्यकताओं से जो ना होगा। अपनी पाठ्य-पुस्तकों की प ताल करनी होगी। देखना होगा कि नई पीढ़ी की जीनियस हिन्दी से जु ` शोध-प्रबंधों की हालत पर विचार करना होगा। हिन्दी में शोध का स्तर शोचनीय है। हिन्दी के अभियान से राजनीति को दूर करना होगा। हिन्दी में साहित्य ही नहीं विश्वविद्यालय और अकादमियाँ भी राजनीति के ब ` अड्डे हैं जहाँ जाति और राजनीति का वर्चस्व है, हिन्दी में नई हवा को बहाने के लिए इस दुर्गन्ध को दूर करना होगा।

हिन्दी के बाज़ार की शक्ति को समझना होगा और समझाना होगा। मीडिया ने राह दिखाई है। बॉलीबुड के प्रसार ने नये देशों में हिन्दी के बीज डाले हैं। उन्हें खाद-पानी मुहैय्या कराना होगा। हिन्दी की अकादमियों और स्वैच्छिक संस्थाओं की ओवरहॉलिंग करनी होगी। ज्यादा ब ी ल ई बाहर की नहीं, अंदर की होती है। चेतन से अधिक अवचेतन में भाषा के संस्कार डालने होंगे जिससे वह अगली पीढ़ी के सपनों की भी भाषा बन सके।

करना तो बहुत दूर की बात है, हम हिन्दी वाले अपनी समस्याएँ, बीमारी समझें तो ! एक मंच पर आकर उन पर विचार तो करें।

इन सब के लिए साझा मंच बनाने का प्रयास ही यह अंतरराष्ट्रीय उत्सव है। आइये इसके माध्यम से हिन्दी के और उससे जु ` सवालों के बहुआयामी स्वरूप को समझने का प्रयास करें और साथ बैठ कर अपने दुःख-सुख एक होने की वास्तविकता से दो-चार हों। समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। हमें ही अपने कदमों की गति तेज करनी होगी और कदमों को समय से मिलाना होगा। आइए, आप हाथ बढ़ाइए, हमने तो अपना हाथ बढ़ा ही दिया है।

## हिन्दी के बढ़ते चरण

**डॉ. हरिकृष्ण प्रसाद गुप्त अग्रहरि**

हिन्दी में बँगला का वैभव है
गुजराती का संजीवन है
मराठी की चुहल है
कना ी की मधुरता है और
संस्कृत का अजस्त्र स्त्रोत है।
प्राकृत ने इसका श्रृंगार किया है
उर्दू ने इसके हाथों में मेंहदी लगाई है।
यह आर्यों के स्वर में गाती है और
अनार्यों के ताल में नाचती है।
हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा और
लिपि हमारी नागरी है।

# भारत देश हमारा

## डा. सुशीला गुप्ता

माँ भारती के सपूतों का करती हूँ मैं अभिनन्दन
उनकी चरण धूलि लेकर करती हूँ मैं शत्-शत् वंदन।
ग्राम, नगर, पर्वत, नदियों का नाम नहीं है भारत देश
भू के त्रिभुजाकार चित्र का नाम नहीं है भारत देश।
जहाँ ज्ञान के दीपक जलते वही हमारा प्यारा देश
जहाँ स्नेह सुर सरिता बहती वह है जग से न्यारा देश।
जहाँ प्रकृति भी शिक्षा देती बदल-बदलकर अपना वेश
उसी देश के वासी जग को देते रहते नव संदेश।
जो विदेश में भी सब जग को प्रेम-सूत्र में बाँध रहे हैं
निज मातृ-भाषा, संस्कृति हित जो सतर्क हो जाग रहे हैं।
जो अपने और पराये का संकीर्ण भाव नहीं लाते हैं
सब जग को परिवार समझ जो अपना प्यार लुटाते हैं।
वसुधैव कुटुम्बकम् महामंत्र जो सारे जग को पढ़ा रहे
मातृभूमि के चरणों पर निज भाव-पुष्प हैं चढ़ा रहे।
अपनी माटी की आये सुगंध यह सोच वातायन खोल रहे
ईर्ष्या द्वेष के खारी जलधि में अमृत रस हैं घोल रहे।
वे हैं जननी से दूर किंतु वे माँ के राजदुलारे हैं
वे सपूत ही तो भारत माँ की आँखों के तारे हैं।
ऐसे मातृ-भक्त भाइयों-बहनों का नित नूतन अभिनंदन हो
भाव-पुष्प अर्पित कर उनका जग में शत्शत् वंदन हो।
मातृ-भाषा, मातृ-भक्ति का जो करते निश-दिन वंदन
माँ भारती के इन सपूतों का करती हूँ मैं अभिनंदन।
चरण धूलि लेकर उनकी मैं करती हूँ शत्-शत् वंदन।

# देशप्रेम के नशे में

**नीरज व्यास**

देसी और मोटे हिसाब के अनुसार २६जनवरी और १५अगस्त में करीब सात महीने का अंतर होता है, बुद्धिमान लोगों के अनुसार यह संविधान के निर्माण और स्वतंत्रता की प्राप्ति वाला अंतर है। देश के लिए राष्ट्रीय त्यौहार है और देशवासियों के लिए आनंद दिवस और देशप्रेम प्रदर्शित करने के मात्र दो सुअवसर।

वैसे इस देश से, इस देश के लोग बहुत प्यार करते हैं। विशेषकर १५अगस्त और २६जनवरी को उनका देशप्रेम चरम सीमा पर होता है। या यूँ कहिये उस दिन सार्वजनिक रूप से देशप्रेम का उबाल नज़र आता है।

इन दो सरकारी राष्ट्रीय त्यौहारों के दिन सुबह-सुबह रेडियो पर और मोहल्ले के लाउडस्पीकरों पर लता मंगेशकर वतन के लोगों को वीरों की याद दिलाती नज़र आती हैं और इस प्रकार साल में दो बार ही सही देश के नौजवान देश के शहीदों के बारे में कुछ गाने सुन लेते हैं और अपनी याद ताज़ा कर लेते हैं, यह दिन हमें देशप्रेम की बात याद दिलाने चला आता है। 'हम लाये हैं तूफ़ान से किश्ती निकाल के, इस देश को रखना मेरे बच्चों सँभाल के', ऐसे गाने सुनकर मेरी आत्मा गले तक प्रसन्न हो जाती है। मुझे लगता है कि देशप्रेम में भीगा हुआ मेरा वर्तमानकालिक नेता, बच्चों को ज्ञान बाँट रहा है। और उन्हें अपनी आप-बीती सुना रहा कि हम किसी तूफ़ान से किश्ती को निकाल कर लाये थे और बच्चों को ब` मनोयोग से समझा रहे हैं कि बच्चों, उस किश्ती को तुम सँभालकर रखना। और इस को भी ऐसा लगता है कि ऐसी देशप्रेमी बातें सुनकर कोई बच्चा उस नेता के सामने आयेगा और कहेगा कि ऐ नेता जी, जितने की किश्ती नहीं थी उससे दुगना तो तुमने उसे निकालने में लगा दिया, अब किसे मूर्ख बना रहे हो, जब तुमसे देश नहीं सँभलता तो हमें टिका रहे हो।

२६जनवरी और १५अगस्त ये दो ऐसे राष्ट्रीय त्योहार हैं जिस दिन सभी छुट्टी मनाते हैं। जो छोटे बच्चे, सरकारी अधिकारी या मास्टर नहीं हैं, वे इस दिन को पूरी तरह 'इंज्वाय' करते हैं। चूँकि मैं मास्टर हूँ मुझे इस दिन विशेषरूप से अपने विद्यालय जाना प ता है। सारे साल हम विदेशी कप` पहन सकते हैं, पर इस दिन हमें खादी के सफेद कप` पहन कर जाना होता है। हमारे विद्यालय का नियम है खादी पहनने में फुरती-सी महसूस होती है। चूँकि हममें देशप्रेम है। देश की ख़ातिर साल में दो बार खादी पहनने में हमें कोई विशेष परेशानी नहीं होती। उस दिन हम राष्ट्रगीत भी गाते हैं। जब हम बच्चे थे तो प्रार्थना में रोज राष्ट्रीय गीत गाते थे। मास्टर बनने के बाद साल में दो बार गाना होता है। अब तो बच्चे भी ऐसा ही करते हैं। मैं कॉरपोरेशन के स्कूल में पढ़ा था और आज अँग्रेजी वाले स्कूल में हिन्दी का, मेरा मतलब राष्ट्रभाषा का मास्टर हूँ। राष्ट्रभाषा से मुझे प्रेम हो या न हो पर राष्ट्र से मुझे बहुत प्रेम है। विशेषकर १५अगस्त और २६जनवरी वाला देशप्रेम।

मेरा प ोसी तो शुद्ध राष्ट्रप्रेमी है। वह सारे साल खादी पहनता है। काँग्रेस के प्रति निष्ठावान है। उसका कहना है कि काँग्रेस ने ही देश को आजादी दिलाई। अगर काँग्रेस न होती तो हम आज भी गुलाम रहते। आज राजनीति की बदौलत उसके पास एक शराबखाना, लाखों की सम्पत्ति और दो इंजीनियरिंग कॉलेज हैं। वह इस देश से बहुत प्यार करता है। राष्ट्रीय त्यौहार पर भाषण देता है। बच्चों को लड्डू बाँटता है और बूढ़ों को रात्रि भोज में मुफ्त शराब पिलाता है। उसकी नज़र में अगर कोई ब ा है तो हाईकमान जो निर्गुण निराकार है। जो हर जगह है और कहीं नहीं है। प्रेम में इराक ने कुवैत अपने कब्जे में कर लिया था। युद्ध की आशंका से हमने दस गेहूँ की बोरी, बीस लीटर पेट्रोल, शक्कर, तेल अपने कब्जे में कर लिया, व्यापारियों ने लाखों टन अनाज अब अपने गोदामों में दबा कर रख लिया। सरकार ने गेहूँ व्यापारियों को दिया। व्यापारियों ने महँगे दामों में कालाबाजार में बेच दिया। आम आदमी बीच में झूलता रह गया। वहाँ युद्ध हुआ, यहाँ महँगाई आसमान पर जा चढ़ी। गरीब धूल चाटने लगा और अमीर माल दबाने बैठ गया। अगर यही हालात रहे तो गरीबों को गेहूँ, चावल सरकार टी.वी. पर दिखाने शुरू कर देगी और गरीब सपने में भर पेट खाना खाया करेगा और गरीब बदले में देशप्रेम और सरकार की तारीफ में गीत गाया करेगा।

युद्ध, भूकम्प, बाढ़ आदि में सरकार घोषणा करती है सभी कुछ हमारे पास पर्याप्त है। घबराने की आवश्यकता नहीं है, पर हमारा घबराना ज़ारी रहता है। कल मेरा क्या होगा। हम सरकार की नहीं सुनते, क्योंकि सरकार भी हमारी नहीं सुनती, सरकार सत्ताप्रेमी है, मंत्री कुर्सीप्रेमी है, जनता रोटीप्रेमी है, इन प्रेमियों के बीच देशप्रेमी गायब है।

आज २६जनवरी है, अगर १५अगस्त भी हो तो भी फ़र्क नहीं प ता। सुबह-सुबह शायद देशप्रेमी अपने हाथ में झंडा लेकर अपने घर से बाहर निकले। मैं देशप्रेमी की तलाश में हूँ। जैसे ही वह देशप्रेमी अपने घर से निकलेगा मैं उसके पैर पक  लूँगा, पूछूँगा, कहाँ थे आज तक? देश छो कर क्या अमेरिका चले गये? क्या आप स्वतंत्रया सेनानी है? सरकारी ख़ैरात अर्थात् पेंशन लेने गये थे, या सरकारी भ्रष्टाचार के विरोध में आवाज़ उठाने के चक्कर में किसी आरोप में जेल की हवा खाकर आ रहे हो?

२६जनवरी का सूरज निकल आया। हजारों नेता कारों में घुस कर सिर पर टोपी सजाये संसद भवन, विधानसभाओं और गली मोहल्ले से निकल रहे हैं। जिन लोगों के हाथ में मैंने डंडे देखे थे वे झंडा उठाये, इधर-उधर हँसी बिखेरते हुए मोटर कारों, स्कूटरों और साइकिलों पर पेट्रोल बहाते हुए निकले जा रहे हैं, देशप्रेमियों से भारत की धरती पट गयी है। गानों की आवाज़ें आ रही हैं। आज देशप्रेम चरम सीमा पर है।

एक साथ चार-चार जगह भाषण देकर नेताओं के गले सूख रहे हैं। उन्होंने आज तो कमाल ही कर दिया। देश के सोये हुए नौजवानों का खून गरम कर दिया। उनकी रगों में वीर रस का संचार कर दिया। गाँधी जी के सपनों के भारत को ज़मीन पर साक्षात लाकर रख दिया और तालियाँ बटोर लीं।

२६जनवरी की शाम ढल रही है। शहर के शराबखाने राष्ट्रीय खुशी में बंद हैं क्योंकि आज देशप्रेम के नशे का दिन है। देशप्रेम का नशा जो सुबह चढ़ा था, अब उतार पे है। २६जनवरी तुम्हें नमस्कार। हमें साल में दो बार देशप्रेमी बनने की सलाह दी जाती है, उन नेताओं द्वारा जो देशप्रेम की खोज में सारा देश विदेश घूमते हैं, देश की ख़ातिर लोगों को आपस में ल ाते हैं और देश की जनता प्रेम से ल ती है।

देश के लिए मरने वाले शहीद होते हैं। भूख से मरने वाला शहीद नहीं होता। हिन्दू मुसलमान के झग ों में बीच-बचाव कर मरने वालों के लिए देश का झंडा नहीं झुकाया जाता।

ऐसे करो ों देशप्रेमी चुपचाप किसी कोने में बैठे मिल जायेंगे। उनके सीने पर खादी कप े नहीं लगे, माथे पर देशप्रेम के प्रति खादी टोपी भी नहीं है, पैरों पर चप्पल नहीं है। सरकारी स्वतंत्रता सेनानी पेंशन भी नहीं है, मुँह में भाषण भी नहीं है और पेट भरने के लिए शराब का कारखाना भी नहीं है, उनके पास सिर्फ़ नारा है कि देश हमारा है। जयहिन्द।

## राष्ट्रीय सम्पत्ति

**महेश राजा**

शहर के चि ि याघर में एक नन्हें शावक को गर्मी से बचाने के लिए कूलर लगा दिया गया। यह समाचार पढ़ कर हमारे मित्र बोले, 'देखते हो, अपनी सरकार जानवरों का कितना ध्यान रखती है .....और एक हम हैं कि गर्मी से मरे जा रहे हैं। फाइलों पर न जाने पसीने की कितनी बूँदें हमारी नोट-शीट के साथ इस ऑफिस की जानलेवा गर्मी की चश्मदीद गवाह हैं.....।'

मैंने कहा, 'शावक राष्ट्रीय सम्पत्ति है, और उसे बचाना देश का कर्तव्य है.....अभी सरकारी कर्मचारी राष्ट्रीय सम्पत्ति की परिभाषा में नहीं आते हैं।'

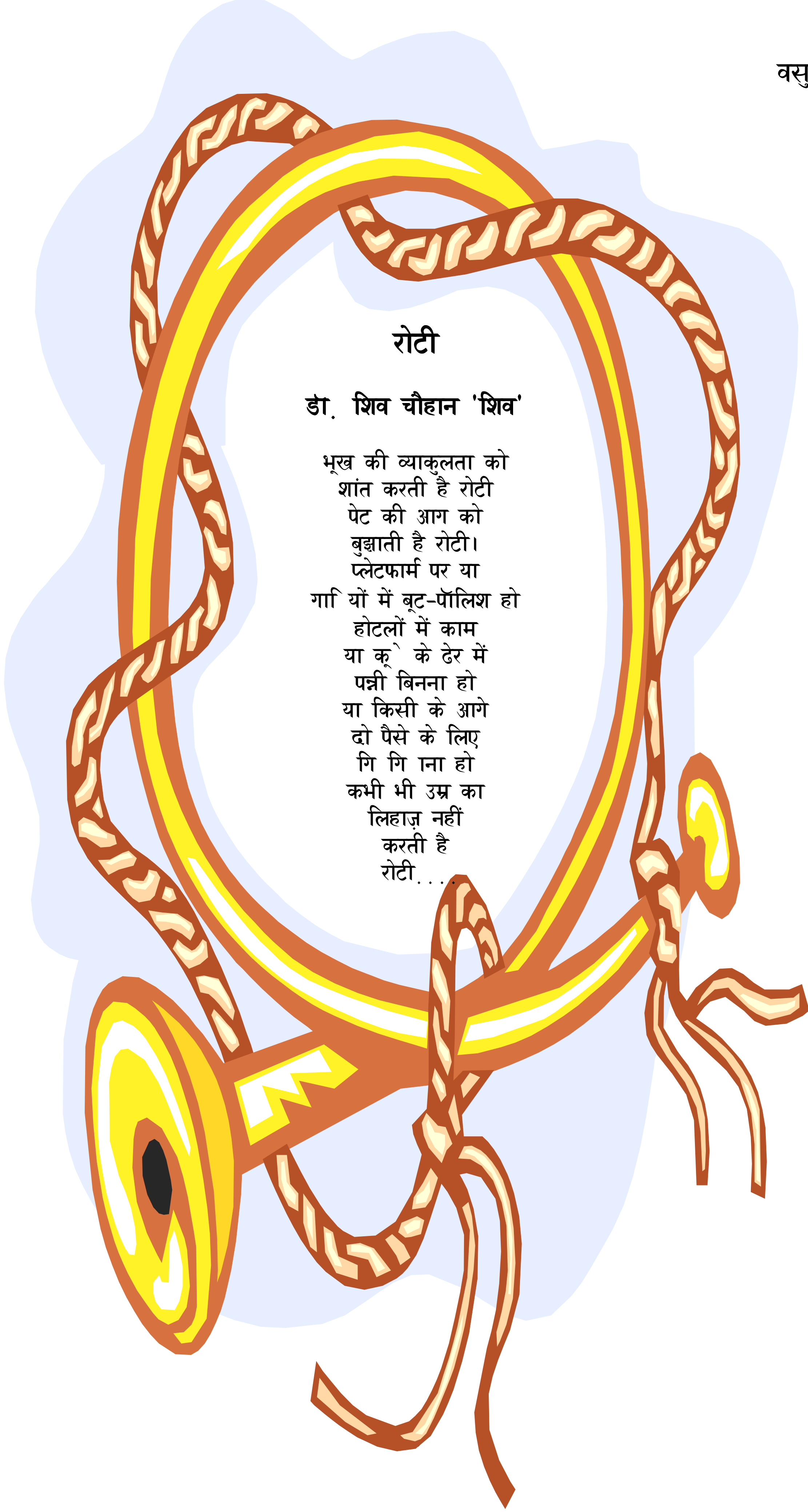

# रोटी

डा. शिव चौहान 'शिव'

भूख की व्याकुलता को
शांत करती है रोटी
पेट की आग को
बुझाती है रोटी।
प्लेटफार्म पर या
गा यों में बूट-पॉलिश हो
होटलों में काम
या कू े के ढेर में
पन्नी बिनना हो
या किसी के आगे
दो पैसे के लिए
गि गि ाना हो
कभी भी उम्र का
लिहाज़ नहीं
करती है
रोटी. . . .

# मुरव्बी

**विष्णु प्रभाकर**

गाँव के ठीक बीचों-बीच उसकी दुकान थी। चारों तरफ नाना-रूप टोकरियाँ सजाकर बीच में एक चौकी पर वह शहनशाह की तरह तन कर बैठते थे। चेहरे की झुर्रियाँ बुढ़ापे की साक्षी देने लगी थीं और कहीं चोट खाकर एक पैर भी कुछ लँग ा हो गया था। लेकिन आवाज़ की क क सदा आयु को धोखा दे जाती थी। हर दीवाली के दिन वह सबसे पहले जलेबियों का टोकरा लेकर भंगियों की बस्ती में पहुँचते थे। घर में जब कभी विवाह-शादी अथवा पुत्रोत्सव का अवसर आता था तो सबसे पहले वह गाँव के भंगी चमारों को दो-दो आने देते थे। हाथ से दान और मुँह से गाली देने में उनका सहज विश्वास था। हर गाली के साथ, 'राम थारा भला करे' कहना वह कभी नहीं भूलते थे। इसी शक्ति के बल पर वह गाँव के मुरव्बी बन गये थे।

उस दिन पेंठ का दिन था। छोटा-सा बाजार भी  से गुलज़ार था। चारों ओर से उठती आवाज़ों और धूल के कारण वातावरण में एक धुँधली गूँज पैदा हो आई थी। सहसा भी  में से किसी ने कहा, 'मका राम-राम नन्दू चौधरी। किंघे चले।'

चौधरी ठिठके फिर हँस कर बोले, 'ओहो, शेख जी दिक्खे हैं। अजी लौंडिया के हाथ पीले करने हैं। सौदा-सुलफ लेने आया हूँ। तुम सुनाओ किंघे जाओ हो।'

शेख जी कुछ जवाब दें कि उस पार अपनी चौकी पर बैठे हुए मुरव्बी एकाएक पुकार उठे, 'नन्दू भाई, नन्दू भाई होत। अरे मका सुनेगा भी यार। यहाँ तो आ जरा।'

कंधे पर चादर डाले नन्दू चौधरी ने मुरव्बी को देखा। फिर पास आकर कहा, 'राम-राम, मुरव्बी। दिके तुमको ही देक्खूँ था। लौंडिया का ब्याह है ना, बर्तन चाहिएँ।'

मुरव्बी ने गहरी आत्मीयता से कहा, 'हाँ, हाँ, क्या डर है। अभी चलता हूँ और कप ा नहीं लोगे? राम थारा भला करे, तमाखू, चावल, . . . .'

नन्दू कुछ उत्तर दे कि इससे पहले ही श्रीधर पाण्डे आ पहुँचे। बोले, 'मुरव्बी बढ़िया चावल चाहिए पाँच सेर, क्या भाव है?'

जैसे किसी ने गाली दे दी हो, ' क्या कहा, भाव? दिके घर वालों से भी कहीं भाव-ताव हो है। मंगल, ओ मंगल, अबे हराम के खाने वाले, सुने नहीं। पीलीभीत वाला चावल तो ला। गुरू आये हैं। हाँ, हाँ वही कोने वाली बोरी में है।'

पाण्डे जी बोले, 'अजी मुरव्बी, पहले भाव बताओ।'

मुरव्बी मु े, 'तो साफ-साफ कह दूँ। राम थारा भला करे, ढाई पा कम तीन सेर का भाव है लेकिन आपके लिए आधा पा कम तोल दूँगा।'

'आहो हाजी करीमुद्दीन दिक्खे हैं, सलाम हाजी जी। ख े क्यूँ रह गए, इंघे बैठो ना ! बढ़िया बासमती दिखाऊँ?'

हाजी साहब ने कहा, 'बस एक बार दिखा दो। बार-बार की बात मुझे अच्छी ना लगे।'

मुरव्बी के जैसे किसी ने चाँटा मारा। तमक कर बोले, 'तमने क्या बात कही हाजी साहब ! कभी खोट्टा माल दिया है क्या?'

हाजी साहब बोले, 'नहीं, नहीं, यह मैंने कब कहा।'

मुरव्बी ने उसी स्वर में कहा, 'और कैसे कहोगे? दिके थारे सहारे दुकान पे बैट्ठा हूँ। पूछ लो गुरू से जो कभी उल्टी बात कही हो। यह देक्खो, यह है बासमती देहरादून का। सूँघो जरा। खुशबू है, खुशबू। कहे देता हूँ कि कढ़ाव में डालते ही गिरह भर की न हो जाए तो नाम बदल देना। राम थारा भला करे।'

हाजी साहब ने सूँघते हुए कहा, 'खुशबू तो है पर कुछ नई. . . .'

मुरव्बी फिर तिनक उठे, 'क्या कहा? नई मालम दे है। वही बात है जैसी रूह वैसे फरिश्ते। दिके हाजी साहब, दस साल से तो मेरी दुकान में प ी है। ऐसी बासमती तो दीवा लेकर ढूँढो तो भी ना मिले। राम थारा भला करे, तुम होगे तीस-पैंतीस के। जब थारे अब्बा जीवें थे, क्या नाम था

उनका, ब े भले थे, क्या मजाल कभी दूसरी दुकान पै पैर रक्खा हो। दिके एक दफे माल नहीं आया था तो बोले, 'मैं तो दूसरे की दुकान का रास्ता ही नहीं जानता।' तब चचा खुद बाज़ार से सौदा लाए। और तुम कहा कि बासमती नई है। यह चालबाजी थारे साथ करूँगा। मूँछ मु ा दूँगा कि कोई हराम का खाने वाला कह तो दे, बासमती पुरानी नहीं है। राम थारा भला करे, वह बात है. . . .'

इसी बीच में देबी खाना खाने के लिए कहने आ गया। बस उबल प े, 'खाने की प  गई अभी से। हराम के खाने वाले। देखता नहीं कि दम मारने की फुरसत नहीं। जाके कह दे कि खाने बिना काम नहीं अटकेगा। मैं उट्ठा तो शादियाँ अटक जाएँगी।'

पाण्डे जी हँस कर बोले, 'जीने के लिए तो खाना जरूरी है।'

उसी गहन गंभीरता से उन्होंने उत्तर दिया, 'तो भी गुरु, साँझ तक रुके रहने में कोई हर्ज नहीं है। राम थारा भला करे, यमराज को अभी मेरी जरूरत नहीं है। उसके कौन-सी औलाद बैठी है जो शादी रचानी प े।'

एक कहकहा लगा और फिर धीरे से गायों के खुरों के साथ अंधकार बिखेरती संध्या ने उस गाँव में प्रवेश किया। मुरब्बी काफी थक गए थे। पैरों की नसें सुन्न प  गई थीं। उन्हें सहलाते हुए मंगल से बोले, 'ओफ्फो भाई, अब जान में जान आई। राम थारा भला करे, जैसे सारी दुनिया की शादियाँ इसी बार होंगी। खाना-पीना भी हराम हो गया। अच्छा, अब दुकान बढ़ाना शुरू कर। अरे देबी। ओ देबी, दीवा तो जला ला। दिके इस आले में रखा है।'

बोलते-बोलते रुपए-पैसों का ढेर सामने लगा लिया। कहा, 'हराम के खाने वाले कहवे हैं कि मुरब्बी इतना कमावे, कुल जमा सौ रुपए भी तो नहीं आए दिक्खे, क्या बचेगा? राम थारा भला करे, मुश्किल से दस रुपए। अरे हाँ, देबी, ओ देबी, दलाली का क्या रहा? कितनी दफा कहा, पैसे के मामले में यकीन नहीं किया करे, पर समझ में ही नहीं आवे। राम थारा भला करे, कब समझोगे? क्या कमा के खाओगे? मका बिज्जू की तरह क्या देखे, जाके ला।'

वह गया ही था कि छोटा ल का राधे आ गया। बोला, 'चच्चा, मैं कल शहर जाऊँगा।'

'तो फिर?'

'फिर क्या? तमस्सुकों की मयाद गली जा रही है। नालिश करनी प ेगी। कोई साला ले के ना दे है। जरूरत के वक्त पैर पक  लें और फिर तोते की तरह आँख फेर लें।'

मुरब्बी ने कहा, 'सब सालों पै दावा ठोंकना चाहिए।'

राधे बोला, 'दावा तो ठौंकूँगा ही, पर उनमें एक तमस्सुक मुनव्वर का भी है। थारा यारबास है, कल को कहोगे कि पूछा भी नहीं।'

मुरब्बी के मुख पर सहसा कितनी ही हल्की-गहरी परछाइयाँ तेजी से उभरीं लेकिन तुरंत ही धुँधला गईं। उसी सहज क क के साथ जवाब दिया, 'इसमें यारबास क्या करेगा? राम थारा भला करे, रुपया लिया है तो देना होगा। नहीं देता तो नालिश करनी होगी।'

राधे बोला, 'तब कल जाकर वकील को कागज़ दे आऊँगा।'

लेकिन जैसे ही उसकी पीठ फिरी, मुरब्बी जैसे चीख उठा, 'ऊँहूँ, थारा यारबास है। कहोगे पूच्छा भी नहीं। पूछ कर क्या कर लिया। मुझ से कहलवाना चाहता था। शर्म नहीं आई हराम के खाने वाले को। बाप से भी छल करे, लाला को पता नहीं कि मैं उसे तब से जानूँ हूँ जब लाला पैदा भी नहीं हुए थे। गरीब किसान खेती करके पेट पाले है, ऐसा यारबास कि झूठ-मूठ भी काम का पता लग जाए तो दिके भागा आवे। परार साल गंगा माई चढ़ आई थीं, सब घाट बहा ले गईं। पानी इतना गहरा कि हाथी डूब जाए। लेकिन उसने कहा, 'साल-भर का त्योहार यूँ नहीं छोड्या जा, नहान होगा।' राम थारा भला करे, मन्दर का कूआँ उसी ने अपने हाथों से खोदा था। बोला, 'वही हाथ अब भी है। रही जान की बात सो हाथ में नहीं, मन में हो. . . .'

मंगल ने धीरे से कहा, 'अब तो रोट्टी ले आऊँ?'

वह चौंक प े, 'क्या कहा? हाँ, हाँ, ले आ। सवेरे का भूक्का हूँ। देख पराँवठों में अजवायन डलवा देना और हाँ, चूरन लाना मत भूल जाना। अरे मेरे यार, चला जावे है। बात तो सुन लिया कर, दिके मुनक्का खतम हो गई, लेते आना। भूलना मत। अब ख ा-ख ा क्या देक्खे है। राम थारा भला करे, जा दौ  के जा।'

मंगल गया तो घास वाली ने आवाज़ दी, 'मुरब्बी ! घास नहीं लोगे?'

एकदम जवाब दिया, 'नहीं।'

और जैसे दूसरे क्षण कुछ याद आ गया हो पुकार उठे, 'घासवाली, अरी ओ घासवाली। सुनती नहीं। एक ही गठ ी है?'

घासवाली ने वही जवाब दिया, ' आज-कल घास मिले कहाँ। ये ही मुश्किल से लाई हूँ पेट तो भरना है। राम बरसता ही नहीं।'

बरसेगा, जरूर बरसेगा और राम क्या करे करम भी तो हम खोट्टे करने लगे हैं। उसका कोप ही तो है कि जानवरों के लिए घास नहीं। जा, जा, डाल जा। राम थारा भला करे, लौटती बार पैसे ले जाना।'

घासवाली गई तो देबी की ओर देख कर बोले, 'देखा देबी, न्यार की कितनी मुसीबत है। अब की बार मुनव्वर के खेत में कुछ नहीं हुआ, नहीं तो क्या वह न्यार पर पैसे डालने देता। क्या हुआ जो रुपए नहीं दिए। अरे, तमस्सुक पलट देता, पर मैं तो कहूँगा ही नहीं। क्यों कहूँ?'

मंगल खाना लेकर आ गया तो पैसे सँभालने का भार देबी को सौंप दिया। खाते-खाते इधर-उधर मुस्तैद कुत्तों को पुकारने लगे, 'तो तो. . . .तो. . . .तो. . . .ले, ले, अरे ले भी। वह देख, वह तेरे पा के पीच्छे प ा है। हट. . . .हट, अरे परे हट, बस यहीं, वहीं ख ा रह।'

यह लुका-छिपी चल ही रही थी कि मुनव्वर आ गया। सिर पर मोटा साफा, बदन पर फटी मिरजई और घुटनों तक की धोती और आँखों में निरीहता। बोला, 'रोट्टी खा रहे हो, मुरव्बी। बहुत देर कर देते हो।'

मुरव्बी ने जवाब दिया, 'आजकल तो यही रोना है भाई। ब्याह न जाने किस-किस के होंगे, पर मुसीबत मुझे उठानी प ै।'

मुनव्वर हँस प ा। फिर दो क्षण तक कोई किसी से नहीं बोला। मुरव्बी ने ही वह चुप्पी तो कर पूछा, 'कैसे आए थे?'

एक क्षण सोचते हुए मुनव्वर ने जवाब दिया, 'सुना है, छोटे लाला नालिश करने जा रहे हैं। इस फसल रुक जाते तो. . . .'

मुरव्बी ने जोर से हुँकारा भरा। कहा, 'तो?'

मुनव्वर उसी तरह बोला, ' दिके, तुम उसे जरा कह देखते।'

मुरव्बी ने एकदम जवाब दिया, 'मैं कहूँ? नहीं। मैं कुछ नहीं कहता। राम थारा भला करे, मैं किसी के झग े में नहीं प ता।'

मुनव्वर सहसा हतप्रभ-विमूढ़ बोल नहीं सका। एक क्षण की थका देने वाली स्तब्धता के बाद मुरव्बी ने ही फिर कहा, 'लेकिन तू रुपए दे क्यों नहीं देता?'

मुनव्वर धीरे से इतना ही बोला, 'ये तम कहोगे। होते तो क्या नहीं देता?'

मुरव्बी ने फिर दृष्टि उठा कर उसे देखा और निर्लिप्त भाव से कहा, 'तो मैं क्या करूँ? मंगल, ओ मंगल। पानी ला भाई और ये बर्तन हटा।'

और फिर पानी पीते-पीते बोला, 'देख कहीं से कुछ हो सके तो किसी तरह से कुछ रुपए दे जा। बात टल जाएगी।'

मुनव्वर ने कुछ कहना चाहा, पर 'मुरव्बी' के अतिरिक्त मुँह से कुछ निकला ही नहीं। जैसे दिल कुछ ठण्डा होने लगा हो। कुछ देर शून्य में खोया-खोया सिर झुकाए ख ा रहा और फिर चुपचाप चला गया। उसके जाते ही मुरव्बी ने तेज हो कर मंगल से कहा, 'गया तो जाने दे। हाँ, जरा देख के पानी डाल। दिनभर हाथ-मुँह धोने की फुरसत नहीं हो, कितने गंदे हो गए हैं। और राम थारा भला करे, आज तो आँख भी क वा रही है। घर जाकर ब ी बहू से सुरमा ले आना। राम थारा भला करे, समझ गया न।'

मंगल ने अनमने भाव से पूछा, 'आज ही लाएँ?'

और भी तेज होकर बोले, 'और क्या कल लाएगा। आँख तो आज क वा रही है। हराम के खाने वाले, तुमसे कुछ नहीं होता। जरा-जरा-सा काम भी कह के करवाना प े। बैठ यहीं। मैं खुद जाता हूँ। कहाँ गया वो देबी। सब साले भाग जाते हैं। किसी का काम में जी नहीं लगै। मेरी लक ी कहाँ है। दिके बिछौना बिछा देना और जो बचा-खुचा सामान प ा है उसे भीतर रख देना। राम थारा

भला करे, दिके खाली मत बैठना।' फिर उठते-उठते बोले, 'और खाट के पास पानी रख देना। थैली तकिए के पास। राम थारा भला करे। अबे मुनक्का ले आया था और चूरन?'

मंगल ने जवाब दिया, 'जी हाँ, सब ले आया था।'

'तो मैं अभी आता हूँ।' यह कह कर मुरब्बी घर की ओर चले गए। बहुत दूर नहीं था। लेकिन रात का सन्नाटा उस ब े गाँव को अपने अन्तर में समेट चुका था। जैसे आधी रात बीत गई हो। कहीं कोई कुत्ता भौंक उठता या दूर गीद 'ह्वा-ह्वा' करने लगता। आकाश में कोई तारा टूटता और कहीं हुक्का गु गु ाने की आवाज़ होती। कभी कोई अकेला आदमी तेज-तेज कदम निकल जाता तो कभी दो-तीन व्यक्ति जोर-जोर से बोलते हुए सन्नाटे की नींद हराम कर देते। क्षणिक तूफान की तरह सारा वातावरण अजीब-सी सौंधी-स ी गंध से भरा था। देबी की माँ घर के भीतर के दालान में बैठी सूत अटेर रही थी। आयु पैंतीस वर्ष के आस-पास लेकिन देखने में तीस की भी नहीं लगती थी। सदा मुस्कुराती और काम में लगी रहती। देबी को आया देख कर उसने पूछा, 'आ गया तू? तेरे बाबा ने खाना खा लिया?'

देबी ने जवाब दिया, 'खा रहे थे। पर भाभी, आज उनकी तबियत कुछ खराब है। बहुत देर तक आप ही आप बोलते रहे।'

प्रभा हँस प ी, 'अरे, यह तो उनकी आदत है।'

देबी ने रहस्य की बात बताने की मुद्रा में कहा, 'ना, भाभी। आज तो उनकी आँखों में पानी आ गया था। बार-बार मुनव्वर की बात कर रहे थे। शायद चच्चा के उस पर रुपए चाहिएँ।'

निमिष मात्र में जैसे सब कुछ पारदर्शी हो उठा। बोली, 'तो ये बात है। मैं जानूँ हूँ। तेरे चच्चा विष की गाँठ हैं। नालिश-वालिश की बात होगी।'

सहसा उसी समय दूर से खट्-खट् की आवाज़ पास आती चली आई। उसके साथ बहता चला आया एक स्वर, 'बेट्टी, ओ बेट्टी।'

प्रभा ह ब ा कर उठी, 'तेरे बाबा दिक्खे हैं। जरूर कोई बात है। बिना बात वह घर नहीं आते। तीज-त्यौहार या बीमार होने पर ही आते हैं।'

तब तक मुरब्बी पास आ गए थे। प्रभा ने पूछा, 'कैसे आए? तबीयत तो ठीक है?'

एक पल वह चुप ख े रहे। फिर बोले, 'दिके बेट्टी मेरी गल्लक में कितने रुपए हैं?'

प्रभा ने अचकचाकर उनकी ओर देखा, 'अभी परसों ही तो आपने सौ रुपए मँगवाए थे। हाथ खुला रखने पर क्या रुपया जु े है।'

मुरब्बी जोर से हँस प े, 'राम थारा भला करे बेट्टी। वो बात है कि हाथ खुला रक्खो तो जु े नहीं, बंद रक्खो तो जर लग जाए।'

'लेकिन इस वक्त आप रुपयों का क्या करेंगे?'

'अब दिके क्या बताऊँ? मुनव्वर ने राधे से तीन सौ रुपए लिए थे। चुका नहीं पाया। चुकाने चाहिए थे। पर फसल खराब हो गई। राम थारा भला करे, गरीब है। अब तमस्सुक की मर्यादा गली जा रही है।'

प्रभा बोली, 'तो क्या हुआ, तमस्सुक बदला नहीं जा सकै?'

मुरब्बी ने धीरे से कहा, 'सकै तो है, पर कहै कौन? राम थारा भला करे, उसने ना माना तो? वो बात है कि नादान की दोस्ती जी का जंजाल। सोच्चूँ हूँ क्यों झग े मैं प ूँ, पर वो भी तो वकत-बेवकत हाथ बाँधे हाजिर रहे। राम थारा भला करे, गाय कैसी असील खरीदवा दी। चाहे बच्चा दूह ले। खिलाई अच्छी होगी तो आठ-दस सेर दूध ले लेना।'

बोलते-बोलते वे जैसे कहीं खो गए। स्वर धीमा प ता गया। कहा, 'दिके, जब मैं फेरी लगाऊँ था तो यही एक आदमी था जिसने मदद दी थी। महीनों इसकी झोप ी में दुकान लगाई। राम थारा भला करे बेट्टी, हराम का खाने वाले, ये क्या जानें। वो बात है जिसके पैर न फटे बिवाई, वो क्या जाने पीर पराई।'

प्रभा ने पूछा, 'आपको कितने रुपए चाहिए?'

'अभी तो सौ से काम चल सकता है। दिके बेट्टी तेरी सास के बक्स में गुलबन्द प ा होगा. . .'

प्रभा एकाएक आपादमस्तक सिहर उठी, 'वो तो भाभी जी का है। उसका आप क्या करेंगे? ठहरिए मैं अभी आई।'

मुरब्बी ने बैठते-बैठते कहा, 'हाँ, हाँ, बैट्ठा हूँ। तू गुलबन्द ले आ। राम थारा भला करे, किसी से कहने की जरूरत नहीं है।'

वह तब तक जा चुकी थी। लम्बी साँस लेकर कई क्षण मुरब्बी अपने आप से बातें करते रहे, ब ब ाते रहे। जब लौट कर आई तो एकाएक चीख प`, 'राम थारा भला करे, ले आई गुलबन्द?'

प्रभा ने शांत स्वर में कहा, 'जी गुलबन्द तो नहीं, सौ रुपए हैं। मेरे पास थे। जब आपकी गुल्लक में हो जाएँगे तो रख लूँगी।'

मुरब्बी हतप्रभ अनबूझ सहस्त्र युगों जितने एक पल में उसे देखते रहे। जब संज्ञा लौटी तो पुकारा, 'बेट्टी।'

लेकिन प्रभा तो अब वहाँ थी नहीं। राधे था जो तेजी से आता हुआ सहसा उनसे टकरा गया था। एकदम बोला, 'चच्चा, तुम यहाँ? मका जी तो ठीक है?'

मुरब्बी ने एकाएक अक  कर कहा, 'जी साला कहाँ जावे। वो तो तेरा ही पता नहीं लगे। ले सँभाल, बुढ़ापे में उस मुनव्वर ने जान आफत में डाल दी है।'

राधे हतप्रभ-सा बोला, 'दिके समझा नहीं।'

मुरब्बी ने और भी शेर होकर कहा, 'समझने की इसमें क्या है? नालिश करने को जा रहा था, वही सौ रुपए दे गया है। बहुतेरा कहा कि मुझे बीच में न फाँस, पर तेरे सामने आते तो उसकी नानी मरे। अब भाई गिन ले। किसी साले का ऐतबार नहीं। राम थारा भला करे, मैं चला।'

और यह कह कर वृद्ध मुरब्बी लक ी से खट्-खट् करते हुए वहाँ से चले गए। अक्स्व  राधे भौंचक कभी रुपयों को देखता, कभी उनके जाने की दिशा की ओर। खट्-खट् की आवाज़ निरन्तर धीमी प  रही थी लेकिन अन्तर का तूफ़ान उतना ही तीव्र होता आ रहा था।

## चलो चलें हम मानसरोवर

**सुभाष ऋतुज**

चलो चलें हम मानसरोवर, तैरें बन कर हंस,
मोती दूर, यहाँ दानों में नहीं मिलेगा अंश।
यहाँ उ ानें प्रतिबन्धित हैं, यहाँ चहकना सख़्त मना है,
नी -नी  तक्षक-भक्षक का, ज़हरीला फन आज तना है,
जाने किस पल, किस पंछी पर, ग` काल का दंश।
बगुले बैठे नदी किनारे, घात लगाये हैं मीनों पर,
मीनों के कारण भी, मीनों के जीवन हैं संगीनों पर।
हिंसक, छलियों, घ ियालों के राज कर रहे वंश,
यहाँ रक्त के फव्वारे हैं, सिन्धु आँसुओं के खारे हैं,
पतितों की पतिता नगरी में कलुषित गंगा की धारे हैं।
इस नगरी में सभी कंस हैं, नहीं कृष्ण अवतंश,
जहाँ स्नेह की शीतल छाया, जहाँ समर्पण की लहरें हों,
आओ वही तपोवन ढूँढें, जहाँ प्राण के रंग गहरे हों,
जहाँ परम आनंद शांति हो, तनिक न हो विध्वंश।
चलो चलें हम मानसरोवर, तैरें बन कर हंस,
मोती दूर, यहाँ दानों में नहीं मिलेगा अंश।

# टैगोर : जीवन की एक झलक

**राजीव कुमार भाटिया**

विश्व भारती विश्वविद्यालय का शांतिनिकेतन कैम्पस रवीन्द्रनाथ टैगोर (१८६१-१९४१) ने स्थापित किया था। यह स्थान इस महान व्यक्तित्व के जीवन की झलक प्रस्तुत करता है। टैगोर अध्ययन एवं शोध संस्थान रवीन्द्र भवन में स्थित संग्रहालय में टैगोर को १९१३ में नोबल पुरस्कार समिति से प्राप्त आमंत्रण पत्र देखा जा सकता है। १९१९ में जलियाँवाला बाग के नृशंस हत्याकांड के विरोध में समस्त देश में फैले आंदोलन के दौरान टैगोर ने ब्रिटेन के सम्राट से प्राप्त नाइटहुड की उपाधि लौटा दी थी। उनके इस कदम की भारतवासियों ने बहुत प्रशंसा की थी। परंतु ऐसी घटनायें इस 'महान प्रहरी', जैसा महात्मा गाँधी उन्हें कहते थे, के लम्बे और रोमांचकारी जीवन-वृत्त के छोटे प्रसंग कहे जायेंगे।

क्या टैगोर केवल एक महान कवि, उपन्यासकार, संगीतकार, गीत लेखक, कलाकार, शिक्षाविद्, समाज सुधारक या एक दार्शनिक थे। वास्तव में वे यह सब और उससे भी कहीं अधिक थे। वे वास्तव मे 'अपार चिन्तनधाराओं' यानि 'मायरिआड-माइंडेड मैन' थे। यह शीर्षक कृष्ण दत्ता और एण्ड्रयू राबिनसन द्वारा लिखित उनकी आत्मकथा का शीर्षक है; जो उनके बहुआयामी व्यक्तित्व और अपार सृजनात्मक जीवन के विभिन्न पहलुओं को भली-भाँति प्रस्तुत करता है।

टैगोर के देहांत पर जवाहरलाल नेहरु ने एक बहुत मर्मस्पर्शी और संवेदनशील आकलन किया। संसार के विभिन्न भागों में अनेक महान व्यक्तियों से अपनी भेंट का उल्लेख करते हुए नेहरु ने कहा, 'मैं निःसंदेह रूप से कह सकता हूँ कि जिन दो महानतम् व्यक्तियों से मुझे भेंट करने का सौभाग्य मिला है, वे गाँधी और टैगोर थे।'

'इन दो महानतम् व्यक्तियों के एक ही पीढ़ी के दौरान' देश में पैदा होने पर नेहरु ने कहा कि, 'यह प्राचीन काल से बर्त्तमान तक विचारधारा की अनवरतता है जो भारत है।' उन्होंने उन दोनों में बहुत कुछ समान देखा लेकिन फिर भी उन्हें एक-दूसरे से भिन्न पाया। नेहरु के लिए गाँधी और टैगोर 'भारत की युगों प्राचीन सांस्कृतिक प्रतिभा की समृद्धता है जो एक ही पीढ़ी में ऐसे प्रखर व्यक्तियों को प्रकट करती है - जो हर तरह से विशेष है फिर भी अपनी बहुआयामी व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को दर्शाती है....।'

रवीन्द्र भवन में हमने १९६१ में टैगोर के जन्मशती समारोहों के अवसर पर सत्यजीत राय निर्मित एक वृत्त चित्र रवीन्द्रनाथ टैगोर देखी। जोरासांखो में अपने पारिवारिक घर में बिताये टैगोर का एकाकी बाल्यकाल और कोलकाता में उनकी शवयात्रा के दौरान उम ते जनसमूह की यादगार छवियाँ लंबे समय तक मेरे मानसपटल पर अंकित रहीं। मुझे तत्क्षण नोबल पुरस्कार विजेता सुब्रहमनियन चंद्रशेखर की टिप्पणी याद आई कि टैगोर और सत्यजीत रे, '२०वीं शताब्दी में भारतीय सांस्कृतिक परिदृश्य के दो महान प्रणेता थे।'

टैगोर एक ऐसे असाधारण भारतीय थे जिनका भारत निर्माण में व्यापक योगदान था। लेकिन वह सँकरे राष्ट्रवाद तक सीमित नहीं थे....बल्कि वह तो उसके कट्टर आलोचक थे। उन्होंने लिखा था, 'देशभक्ति हमारा अंतिम आध्यात्मिक आश्रय नहीं हो सकता; मेरा आश्रय मानवता है। मैं हीरों के मूल्य पर काँच नहीं खरीदूँगा और कभी भी जब तक मैं जिंदा हूँ, देशभक्ति को मानवता पर विजय नहीं पाने दूँगा।' अपनी साहित्यिक कृतियों में उन्होंने देश की सांस्कृतिक धरोहर के सार और महानता को प्रस्तुत किया। फिर भी वह सभी पूर्वी संस्कृतियों के प्रशंसक और अध्ययनकर्त्ता थे और उनके समन्वय के प्रबल समर्थक थे। मनुष्य की सार्वभौमिकता पर उनका विश्वास उनके दर्शन का एक अनिवार्य तत्व था।

दिसम्बर १९२१ में स्थापित विश्व भारती विश्वविद्यालय जो टैगोर के विश्वव्यापी दृष्टिकोंण से उपजा था, के उद्देश्यों में 'पूर्व और पश्चिम के संगम का अध्ययन द्वारा साझा मैत्री भाव हासिल करना' शामिल था और इस प्रकार 'दो भूगोलार्द्धों के बीच विचारों के मुक्त संचार की स्थापना' से विश्व शांति में योगदान देना है। फलस्वरूप यूरोप और पूर्व के कुछ महान विद्वान शिक्षा ग्रहण करने,

अध्यापन और ज्ञान का आदान-प्रदान करने शांतिनिकेतन आये। यह एक गैर पारंपरिक प्रयोग था और इसकी वैधता समय गुज़रने के साथ बढ़ ही रही है।

संगीत भवन में जब हमने प्रवेश किया तो उसकी प्रथम मंजिल की एक खि की से आती रवीन्द्र संगीत की सुमधुर लहरियों ने हमारा स्वागत किया। उस शिक्षार्थी को टैगोर के दस हजार से अधिक गीतों में से किसी गीत को भी चुनने की स्वतंत्रता थी। इतना समृद्ध गीतों का खज़ाना ! टैगोर ने कहा, 'संसार में फैले विविध रंग मुझसे प्रश्न पूछते हैं, और मेरा अंतर्मन संगीत के रूप में उनका उत्तर देता है।' संगीत के क्षेत्र में शांतिनिकेतन के अनूठे महत्व के बारे में विशेषज्ञ जैसा कहता है। 'रवीन्द्रनाथ द्वारा शब्दों और धुनों के माध्यम से एक क्रांति लाना है।'

कला भवन में कोरिया, जापान और अन्य देशों के विद्यार्थी भारत के कई भागों से आये विद्यार्थियों से घुलते-मिलते हैं जब वे साथ मिल कर चित्रकारी, मूर्तिकारी, ग्राफिक्स, कप ा बुनाई व भित्तिचित्रकारी की तकनीकों को सीखते हैं। इस संकाय के भूतपूर्व सदस्य और प्रसिद्ध कलाकार रामकिंकर बैज द्वारा बुद्ध, गाँधी और अन्य की सुंदर प्रतिमायें देखने पर हमे विश्व भारती की कलात्मक धरोहर और परिवेश की जानकारी मिली। प्रसिद्ध कलाकार जैसे नंदलाल बोस, असित कुमार हलदार, बीनोद बिहारी मुखर्जी तथा अन्य ने अपने अमूल्य योगदान से इस न्यास की धरोहर को समृद्ध किया है।

निपोन भवन और चीना भवन विश्वविद्यालय के विदेशों के साथ संबंधों को प्रदर्शित करते हैं। ऐसा टैगोर की अनेक विदेश यात्राओं के कारण ही संभव हुआ है। १८७८ और १९३४ के बीच टैगोर ने चार महाद्वीपों की यात्रा की और वह अर्जेन्टीना, कैनेडा और जापान जैसे दूरदराज देशों में पहुँचे, यूरोपीय देशों और अमेरिका की कई यात्राएँ कीं और एशिया, पर्शिया तथा चीन तक यात्राएँ कीं। उनके विचार और वहाँ के बारे में उनकी धारणाएँ उनके पत्रों, डायरियों, लेखों और कविताओं में मौजूद हैं जो यात्राओं में रुचि रखने वालों के लिए अमूल्य सम्पदा है, वे लोगों को यात्रा-डायरियाँ रखने को प्रेरित करते हैं चाहे उनमें से चंद ही टैगोर के समान गहराई से विश्लेषण कर सकें।

विश्व भारती को भारतीय संसद ने 'राष्ट्रीय महत्व के संस्थान' की मान्यता प्रदान की है। १९५१ से यह एक केन्द्रीय विश्वविद्यालय के रूप में काम कर रहा है। इसके उद्देश्य और कार्यक्षेत्र आज के जटिल जगत में प्रासंगिक हैं। संभवतः इसको भविष्य में उत्कृष्टता की नयी बुलंदियाँ हासिल करने के लिए अधिक संसाधन प्राप्त करने की आवश्यकता है। विश्व भारती, जहाँ प्रखर विचारधाराओं में परस्पर आदान-प्रदान होता है और वे एक-दूसरे को समृद्ध बनाती हैं, की देख-रेख में ही रवीन्द्रनाथ टैगोर की स्मृति और उनके आदर्शों को सजीव बनाये रखना निहित है।

# १८५७ गदर नहीं, जन-क्रांति

**नरेश शांडिल्य**

१८५७ की जन-क्रांति को गदर कहना सरासर नाइन्साफी है। गदर शब्द गद्र से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है - बलवा, दंगा, विद्रोह आदि। भारत की पहली आजादी की ल ाई को गदर कहना अँग्रेजों के हित में था, उनकी आगे की योजनाओं को सूट करता था और ऐसा साबित करने से उनकी नाक कटने से भी बचती थी, इसीलिए उन्होंने षड्यंत्रपूर्वक अपने पिट्ठू इतिहासकारों और बुद्धिजीवियों से इसे गदर साबित करने को कहा। और क्योंकि भारत की यह पहली आज़ादी की ल ाई थी, जो सही मायनों में जन-क्रांति थी, लेकिन असफल हो चुकी थी, इस कारण भी अँग्रेजों को सहूलियत हुई कि वह मनमाने तरीकों से इस क्रांति का इतिहास लिखवाएँ, जो कि उन्होंने किया भी।

भारतीयता-विरोधी और अँग्रेजों के पिट्ठू इतिहासकारों ने मंगल पांडेय वाली घटना के इर्द-गिर्द ऐसा मनगढ़ंत ताना-बाना बुना कि एक महान क्रांति और महान स्वतंत्रता संग्राम को गदर जैसी अदना और अपमानजनक संज्ञा का जामा पहनना प ा। दरअसल अँग्रेजों की शर्मनाक हरकतों के ऐसे किस्सों से भारत का इतिहास भरा प ा है, जिसके कारण बार-बार इतिहास के पुनर्लेखन या इतिहास की पुनर्समीक्षा की बातें उठती रहती हैं। अँग्रेजों ने योजनापूर्वक भारत के योजक-तत्वों पर प्रहार किये, भारत की समरसता के अमृत-बिन्दुओं में अलगाव का ज़हर घोला। यह सब उनकी फूट डालो और राज करो की नीति का अहम् हिस्सा था।

असल में भारतीयता-विरोधी मानसिकता वाले तथाकथित प्रतिष्ठित और विद्वान इतिहासकारों ने भारत के असली इतिहास की बखिया ही उधे  कर रख दी है। इतना झूठ....इतना झूठ....कि सच तो क्या, झूठ भी चुल्लू भर पानी में डूब मरे। इनके झूठ की बानगी देखना चाहेंगे आप? तो देखिए - 'राम और कृष्ण काल्पनिक थे अतः महाभारत और रामायण कल्पित महाकाव्य हैं। जैनियों के सभी तीर्थंकरों की कथाएँ मात्र एक मिथक हैं। महावीर एक भटका हुआ यात्री था। गुरु तेगबहादुर ने अपना बलिदान नहीं दिया था बल्कि उसे फाँसी दी गई थी। जाट लुटेरे थे। आर्य समाज ने राष्ट्रीय एकता को भंग किया। महर्षि अरविन्द घोष, बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय, विपिन चन्द्र पाल जैसे नेता आतंकवादी थे।'

इसी तरह उन्होंने १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम को भी एक विद्रोह या गदर की संज्ञा देकर कलंकित किया। अब इस सब को क्या कहेंगे आप? ऐसे महान इतिहासकारों को तो लानत ही भेजी जा सकती है। प्रजातंत्र में और कर भी क्या सकते हैं आप?

वैसे यह देश का दुर्भाग्य ही रहा कि सन् १८५७ का स्वतंत्रता-संग्राम सफल नहीं हो सका। यदि यह महान संघर्ष सफल हो जाता तो भारत की कहानी दूसरी ही होती। कम से कम देश के बँटवारे का दुःख तो हमें झेलना नहीं प ता। क्योंकि इस संघर्ष की सबसे ब ी विशेषता यह थी कि हिन्दू और मुसलमानों ने एक साथ कंधे से कंधा मिलाकर इस युद्ध को ल ा था। यहाँ पर गाँधी और जिन्ना जैसा मतभेद या मनमुटाव नहीं था। किंचित कारणों से १८५७ की निर्धारित-योजना समय से पहले ही शुरू हो गई जिसके कारण अँग्रेज सरकार सचेत हो गई और अंततः इस जन-क्रांति को बेरहमी से कुचल दिया गया। सफलता से ब ी कोई उपलब्धि और असफलता से ब ा कोई जुर्म नहीं होता - सम्भवतः इसी कारण से इस असफल महान संघर्ष को किसी ने सैनिक विद्रोह तो किसी ने गदर कह कर कलंकित किया। असल में यह मात्र विद्रोह या गदर नहीं था। अगर भारत का यह महान स्वतंत्रता-संग्राम योजनानुसार सफल हो जाता तो यकीनन पूरा विश्व इसे आदर के साथ एक महान-क्रांति की संज्ञा देता। लेकिन फिर भी यह संघर्ष क्योंकि भारत की आजादी की ल ाई का प्रथम शंखनाद था, इसलिए इसकी असफलता भी खास मायने रखती है। यों होने को असफल तो १९०५ में रूस में जारशाही के ख़िलाफ किया गया आंदोलन भी हुआ था। असफल तो चीन की १९११ वाली क्रांति भी हुई थी। लेकिन ऐसे आंदोलनों और क्रांतियों की अहमियत कम कतई नहीं होती। यह १८५७ की क्रांति का ही परिणाम था कि १८५७ से लेकर १९४७ तक अँग्रेजी सरकार एक पल को भी चैन की नींद नहीं सो पाई और भारत में राष्ट्रीय-चेतना की लहरें निरंतर गतिशील रहीं।

जो काइयें-इतिहासकार १८५७ को महज़ राजे-रजवा ों का विद्रोह या गदर बतलाते हैं वे ये क्यों भूल जाते हैं कि अँग्रेजों ने केवल राजे-रजवा ों के अधिकारों को ही नहीं छीना था बल्कि जनता का भी भरपूर शोषण किया था। अँग्रेजों ने जहाँ बहादुरशाह ज़फर और रानी लक्ष्मीबाई की गद्दी के वारिसों को लेकर शर्मनाक राजनीति की, वहीं देश की जनता के साथ भी घिनौना बर्ताव किया। इसी कारण इस क्रांति में जन-जन की भागीदारी हुई। बेशक इसकी शुरुआत सामंतो और सैनिकों के ज़रिये हुई लेकिन यह ल ाई अंततः जन-जन की ल ाई बनी। अँग्रेजों द्वारा उस समय जनता के हितों और स्वाभिमान पर अनेकानेक प्रहार किए गए थे। ढाका की मलमल बनाने वाले बुनकरों के हाथ कटवाए गए, रैयतवा ी और मालगुजारी के नियमों द्वारा किसानों को बर्बाद किया गया, आगरा की मोती झील तो  कर उसका संगमरमर बेच खाया गया, ताजमहल तक को नीलाम करने की योजनाएँ बनाई गईं, भारत के वैभव के प्रतीक कोहिनूर हीरे को लूट लिया गया।. . . .क्या ऐसे में पी ित और अपमानित जनता ने अपना धैर्य नहीं खोया होगा? शस्त्र नहीं उठाये होंगे?

बहादुरशाह ज़फर के नेतृत्व में ल े गये इस महासमर के प्रतीक-चिन्ह कमल और रोटी थे। जिन्हें यकीनन प्रतिहिंसा और शोषण का प्रतीक कहा जा सकता है। योजनाकारों ने इन प्रतीकों को देश के कोने-कोने में भेजकर आजादी के प्रति अलख जगाया। जब इस योजना का प्रचारक कमल का फूल लेकर किसी सैनिक छावनी में जाता था तो हिन्दुस्तानी-सैनिक श्रद्धापूर्वक इस योजना से जु ने की प्रतिज्ञा करते थे। इसी प्रकार जब वह रोटी लेकर गाँव के चौकीदार के पास पहुँचता था तो गाँव का चौकीदार चुपके-चुपके गाँव वालों को इकट्ठा करता था। रोटी के छोटे-छोटे टुक े सबको बाँट देता था। वे लोग रोटी का टुक ा मुँह मे रखते और अन्न की कसम खाते हुए प्रतिज्ञा करते थे कि हम इस संग्राम में पूरा-पूरा सहयोग करेंगे। इस प्रकार कमल और रोटी ने क्रांति का संदेश बन कर पूरे भारत की यात्रा की और जन-जन को इस महासमर से जो ा।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि सन् १८०६ में वैलूर-क्रांति से पहले भी इसी तरह रोटियों के वितरण द्वारा संघर्ष का संदेश फैलाया गया था। अब रोटी के संदेश को भी क्या जनता से नहीं जो ेंगे आप? असल में अपनी नाक बचाने के लिए ही अँग्रेजों ने इस ल ाई को जनता की ल ाई मानने से बार-बार इंकार किया। हालाँकि उन्हीं के द्वारा एकत्र अनेकानेक साक्ष्य इसके उलट ही कहानी बयान करते हैं।

ख़ैर, बात मुद्दे की यह है कि ऐसे ऐतिहासिक प्रसंगों की पुनर्व्याख्या अवश्य होनी चाहिए ताकि हमारी नयी पीढ़ी को सत्यों-अर्द्धसत्यों का फ़र्क मालूम हो और वह ईमानदारी से अपने निष्कर्षों पर पहुँच पाए। आज इतिहास के हर विवादास्पद पन्ने की आधुनिक बोध के साथ नये सिरे से समीक्षा की ज़रूरत है। आने वाले समय में हमारी आज़ादी की रक्षा-सुरक्षा के लिए भी यह निहायत ज़रूरी है। इस सब के लिए १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की १५०वीं वर्षगाँठ से ब ा अवसर कौन सा होगा?

# जन-क्रांति

## आचार्य संदीप कुमार त्यागी 'दीप'

**भारतीय सभ्यता का पश्चिम में डूब गया -**
**भानु, घिरा चहुँ ओर, घोर अँधियार था।**
**विकराल-काली कालरात्रि से थे सब त्रस्त,**
**जनता में मचा ठौर-ठौर हाहाकार था।।**
**रैन में भी कभी नहीं मिलता था चैन हन्त !**
**उठता तूफान पुरज़ोर बार-बार था।**
**हम भारतीयों पर जो कुछ था मालोज़र,**
**उस पर होता गोरे चोर का प्रहार था।।**
**एक क्रांति-यज्ञ रण-बीच था आरम्भ हुआ,**
**वीरों द्वारा सन् अट्ठारा सौ सत्तावन में।**
**गोरे चाहते थे करना तुरन्त-अंत, क्योंकि -**
**मंत्र आज़ादी के गूँजे थे इस हवन में।।**

# बाल पत्रिकाओं की भूमिका और दायित्व

देवेन्द्र कुमार देवेश

वे पत्रिकाएँ जिनमें बच्चों के अनुकूल साहित्य प्रकाशित होता है, बाल पत्रिकाएँ कही जाती हैं। मनोरंजन, शिक्षा और बच्चों की भावना – इन तीन बिंदुओं के इर्द–गिर्द ही बाल पत्रिकाओं के उद्देश्य का निर्धारण उनके संपादकों द्वारा होता रहा है। बाल पत्रिकाओं में जो कुछ भी प्रकाशित होता है, वह कमोबेश इन्हीं तीन दृष्टिकोणों से आप्लावित होता है। यह फिर एक अलग मुद्दा है कि प्रकाशकों का व्यावसायिक दृष्टिकोण भी इस निर्धारण में अपना दखल रखता है।

साहित्य का उद्देश्य मनोरंजन ही है – यह मानने वालों की कमी नहीं है। ऐसे लोग यह भी मानते हैं कि बच्चों की पत्रिकाओं का उद्देश्य मनोरंजन ही होना चाहिए, क्योंकि बच्चा हर कहीं परिवार में, समाज में, कक्षा में विविध प्रकार की शिक्षाओं से घिरा होता है तथा उन्हें शिक्षित करने के असामान्य तरीके उन्हें अन्यमयस्क बनाते हैं।

दूसरी तरफ़, एक ऐसा वर्ग भी है जो मनोरंजन के साथ–साथ शिक्षा को भी बाल पत्रिकाओं का उद्देश्य मानता है। इस वर्ग की नज़र में, ठीक है कि बच्चों का मनोरंजन हो, लेकिन अंततः बच्चों को शिक्षा की सीख की ज़रूरत है, ताकि वे समाजानुकूल बन सकें। इस प्रकार यह वर्ग मानता है कि बाल पत्रिकाओं का मूल उद्देश्य शिक्षा ही है, मनोरंजन तो उस पर लिपटा हुआ आकर्षक रैपर मात्र है।

एक तीसरा वर्ग भी है, जो बाल पत्रिकाओं के उद्देश्य का निर्धारण 'बच्चों की भावनाओं' के इर्द–गिर्द करना चाहता है। इसके अनुसार बच्चों को मनोरंजन और शिक्षा, दोनों की ज़रूरत तो है, लेकिन वे उनकी रुचि, परिवेश और भावना के अनुकूल हों, यह सबसे ज़्यादा ज़रूरी है। आज के बच्चों का परिवेश क्या है? वे वैज्ञानिक युग में जी रहे हैं, लोकतांत्रिक समाज में रह रहे हैं तथा उनकी निष्कलुष भावना सबको समान नज़रिए से देखना चाहती है। ऐसे में उनके नज़रिए को विकसित करने की आवश्यकता है, न कि इसे कुंद करके उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति के विपरीत अलग नज़रिया प्रतिस्थापित करने की।

पूर्वोक्त तीन बिंदुओं के अंतर्गत ही मुझे पिछले कुछ वर्षों के दौरान प्रकाशित बाल पत्रिकाओं की भूमिका पर विचार करना उपयुक्त प्रतीत होता है।

मनोरंजन बाल साहित्य में मुख्यतः दो रसों का परिपाक होता है... हास्य रस और अदभुत रस। इनसे जुड़ी बाल रचनाएँ हैं – चुटकुले, हास्य से परिपूर्ण कहानियाँ, कार्टून और चमत्कारिक (भूत–प्रेत, राक्षसों, परियों और अद्‌भुत घटनाओं वाली) कहानियाँ या ऐसी कहानियों पर चित्रकथाएँ।

हास्य बाल साहित्य कमोबेश सभी बाल पत्रिकाएँ प्रकाशित करती हैं। यहाँ विशेष रूप से लोटपोट और मधु मुस्कान का नाम लिया जा सकता है। ये दोनों पत्रिकाएँ लंबे अरसे से निकल रही हैं। उन्होंने अपने नाम के अनुरूप ही बच्चों के लिए अधिकाधिक मनोरंजक सामग्री पेश करने का प्रयास किया है, जो चुटकुलों, हास्यकथाओं और चित्रकथाओं के रूप में हैं। बालहंस पत्रिका ने भी समय–समय पर हास्य रचनाओं का विशेष रूप से समायोजन किया है।

दूसरी तरफ़, कुछ इनी–गिनी पत्रिकाओं को छोड़कर प्रायः सभी बाल पत्रिकाएँ चमत्कारपूर्ण मनोरंजक बाल साहित्य का प्रकाशन नियमित रूप से करती हैं। इस संदर्भ में विशेष रूप से चंदामामा, गुड़िया, नव मधुवन, नन्हे सम्राट, दोस्त और दोस्ती तथा नंदन पत्रिकाएँ उल्लेखनीय हैं। इन पत्रिकाओं ने बड़ी संख्या में भूत–प्रेत, राक्षस और परियों से जुड़ी रचनाएँ प्रकाशित की हैं, जिनमें जादुई और चमत्कारपूर्ण घटनाओं का आधार लिया गया है। इस बीच नंदन और बालहंस ने परी कथा विशेषांक भी प्रस्तुत किए हैं।

शैक्षिक बाल साहित्य के मुख्यतः तीन रूप हैं – सूचनात्मक, विचारात्मक और भावनात्मक।

सूचनात्मक रचनाएँ वे हैं, जिनमें सीधे-सीधे सूचनाएँ दी जाती हैं। ऐसी रचनाएँ 'क्या आप जानते हैं?' 'इसे भी जानों' जैसे शीर्षकों के अंतर्गत चित्ररहित या चित्रसहित प्रकाशित होती हैं। विचारात्मक शैक्षिक साहित्य के अंतर्गत विविध संदर्भों से जुड़े जानकारीपूर्ण आलेख आते हैं। जबकि भावात्मक शैक्षिक बाल साहित्य वे रचनाएँ हैं, जिनके द्वारा बच्चों की मनोभावना को कुरेद कर उन्हें मनोवांछित शिक्षा (सीख) देने का प्रयास किया जाता है।

सूचनात्मक शैक्षिक साहित्य प्रायः सभी बाल पत्रिकाएँ प्रकाशित करती हैं। जबकि विचारात्मक बाल साहित्य प्रकाशित करने वाली कुछेक पत्रिकाएँ ही हैं। इस संदर्भ में प्रमुखतः सुमन सौरभ, बालहंस, बाल भारती, समझ झरोखा, बालवाणी, शिशु सौरभ और चकमक का नाम लिया जा सकता है। इस मायने में चकमक विशिष्ट है। यह बच्चों के लिए संभवतः एकमात्र विज्ञान पत्रिका है। यह एक महत्वपूर्ण शैक्षिक पत्रिका है, सरल ढंग से विज्ञान पत्रिका है, जिसमें सरल ढंग से विज्ञान संबंधी जानकारियाँ दी जाती हैं, जो सहज ही बच्चों तक संप्रेषित हो जाती हैं।

भावात्मक शैक्षिक साहित्य सभी बाल पत्रिकाओं में प्रकाशित होता है, हालाँकि व्यक्ति सर्वदा सीखता ही रहता है। परंतु बच्चों के बारे में ख़ास कर यह धारणा रूढ़-सी हो गई है कि उन्हें तो बस सीखना ही सीखना है। इसलिए इस तरह का साहित्य कमोबेश सभी पत्रिकाएँ प्रकाशित करती हैं, जिनमें कविता, कहानी या एकांकी के ज़रिए कहीं न कहीं किसी न किसी तरह की शिक्षा प्रदान किए जाने का उद्देश्य होता है। यह ज़रूर है कि इस तरह की साहित्य-रचना में सर्वदा यह सावधानी बरती जाती है कि जो भी शिक्षा हो वह सहज, सरल और रोचक ढंग से रचना में पिरोई जाए, ताकि बच्चों को वह बोझिल न करें। फिर भी ज्ञान-विज्ञान की जानकारियों से बोझिल कुछेक रचनाएँ आ ही जाती हैं।

बच्चों की भावनाओं से जुड़ा बाल साहित्य बहुत ही कम प्रकाशित हो रहा है। यहाँ उल्लेखनीय है कि बच्चों की भावनाओं से जुड़े बाल साहित्य से मेरा मतलब ऐसे बाल साहित्य से है जो बड़ों की आरोपित इच्छाओं और मान्यताओं से मुक्त और बच्चों की नैसर्गिक मनोभावना से संपृक्त हो। ऐसा साहित्य अधिकाधिक रचा जाए और वह प्रकाशित होकर बच्चों तक पहुँचे। यह एक लंबे समय से बाल साहित्य-समालोचकों के बीच गंभीर चर्चा का विषय रहा है। इस चर्चा से जुड़े समालोचकों ने अपने द्वारा संपादित बाल पत्रिकाओं में ऐसे बाल साहित्य को प्रमुखता से सामने लाने के प्रयास भी किए हैं। कुल मिलाकर इन चर्चाओं और प्रयासों का यही प्रभाव रहा है कि किसी अन्य बाल पत्रिका के लिए ऐसा साहित्य संपूर्णतः या अंशतः प्राथमिकता तो नहीं बना, परंतु बिल्कुल हाशिए पर भी नहीं गया। ऐसे साहित्य से संपादकों को विरोध नहीं है। यह साहित्य प्रायः बाल पत्रिकाओं में छिटपुट रूप से छपता रहता है।

'बच्चों की भावना' का आधार लेकर ही पिछले दशक में एक रचनात्मक आंदोलन भी बाल साहित्य-जगत में चर्चा का विषय रहा है। यह आंदोलन है...बच्चों की भावना से जुड़ा बाल-साहित्य अधिकाधिक रचा जाए, इसके लिए बाल किशोरों को रचना-क्रम से जोड़ा जाए। उनकी रचनात्मकता को प्राथमिकता और महत्ता के साथ सामने लाया जाए। पिछले दशक में इस आंदोलन का वैचारिक आधार तैयार करने का श्रेय 'किशोर लेखनी' पत्रिका को जाता है। 'किशोर लेखनी' ने इस संदर्भ में अपने अंक निकाले हैं और इस वैचारिक चर्चा में साहित्य के महत्वपूर्ण हस्ताक्षरों को भी शामिल किया है। विभिन्न आरोपों-प्रत्यारोपों के बीच इसने बाल किशोरों की रचनात्मकता की महत्ता के लिए संघर्ष किए हैं। इसकी वैचारिक अवधारणा के अनुसार 'बाल-किशोर' अपनी भावनाओं और समस्याओं के सबसे ज़्यादा क़रीब होते हैं, इसलिए उनसे जुड़ा श्रेष्ठ बाल साहित्य उनकी लेखनी में निश्चय ही पाया जाता है।'

यों बाल पत्रिकाओं या बाल परिशिष्टों में बाल किशोरों की घुसपैठ प्रतियोगिताओं के माध्यम से होती रही है, परंतु 'किशोर लेखनी' ने यह सवाल उठाया कि प्रतियोगिताओं के माध्यम से बच्चों की रचनात्मकता का उचित प्रस्तुतीकरण नहीं हो पाता है, क्योंकि उनकी अधिकांश अच्छी रचनाएँ इस आधार पर प्रतियोगिताओं से हटा दी जाती हैं कि ये रचनाएँ हो ही नहीं सकतीं, जबकि प्रतियोगिता में

शामिल होने के लिए बच्चे अपनी रचनात्मकता की बेहतर से बेहतर प्रस्तुति करने के प्रयास करते हैं, ताकि वे सर्वश्रेष्ठ घोषित किए जाएँ। दूसरी तरफ़, यदि उनकी बेहतर रचनात्मकता प्रतियोगिताओं के माध्यम से स्थान पा जाती है तो वह प्रतियोगिताओं के अंतर्गत प्रकाशित होने के कारण समुचित महत्ता प्राप्त नहीं कर पातीं। यही कारण है कि 'किशोर लेखनी' ने बाल किशोरों की रचनात्मकता को प्रतियोगिताओं से इतर भी स्थान दिए जाने पर बल दिया।

व्यावहारिक रूप से बाल-किशोरों की रचनात्मकता को अधिकाधिक सामने लाने का श्रेय चकमक, बालहंस और समझ झरोखा को जाता है। इन पत्रिकाओं में छपी अधिकांश रचनाएँ बाल-किशोर वय के रचनाकारों द्वारा रचित होती हैं, हालाँकि प्रायः रचनाओं पर बड़ों की इच्छाओं/मान्यताओं के प्रभाव स्पष्ट नज़र आते हैं। फिर भी, बच्चों की निष्कलुष भावनाओं से जुड़ी रचनाएँ भी अवश्य आई हैं। चकमक द्वारा बच्चों की रचनाओं की संकलन पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित की गई हैं। ये पत्रिकाएँ बच्चों की तमाम सृजनात्मकता को सामने लाने के प्रयास में निरंतर सक्रिय हैं।

उक्त आंदोलन से प्रायः बाल पत्रिकाएँ प्रभावित रही हैं। इस दौरान अख़बारों के परिशिष्टों पर भी बच्चों की रचनाओं ने प्रमुखता से स्थान पाया है। उक्त पत्रिकाओं के अलावा कुछ अन्य पत्रिकाओं ने भी बच्चों की रचनाओं के विशेषांक प्रकाशित किए हैं और सामान्य अंकों में भी उनकी रचनात्मकता को भी प्राथमिकता से स्थान दिया है। इस संदर्भ में बाल दर्शन, चमाचम और चौथी दुनिया साप्ताहिक अख़बारों के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्होंने प्रायः बच्चों की रचनात्मकता को सामने लाने के प्रयास किए हैं और उन्हें प्रेरित, मार्गदर्शित करना चाहा है। बाल दर्शन और चौथी दुनिया ने अपने बाल परिशिष्टों के संपादन तक बाल-किशोर वय के रचनाकारों से इसे कराने के सफल प्रयोग किए हैं।

इस दौरान पत्र-पत्रिकाओं ने प्रतियोगिताओं की विविधता पर भी ध्यान दिया है। यों तो 'चित्र बनाओ', 'रंग भरो', 'शीर्षक बताओ', 'कहानी लिखो', 'कविता लिखो', 'सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता', 'पहेली प्रतियोगिता' जैसी प्रतियोगिता एक-दो की संख्या में प्रायः बाल पत्रिकाओं द्वारा आयोजित होती रही हैं, परंतु कुछेक पत्रिकाओं ने नये-नये ढंग से प्रतियोगिताएँ आयोजित कीं, ताकि बच्चों की रचनात्मकता का कोई भी पक्ष किसी भी रूप में सामने आने से वंचित न रह जाए। इस संदर्भ में बाल हंस, चकमक, समझ झरोखा और बालदर्शन के नाम लिए जा सकते हैं।

लेकिन खेद का विषय है कि शिशु वर्ग के बच्चों की कोई प्रतिनिधि पत्रिका नहीं है। चंपक की कुछेक रचनाएँ इस वर्ग के अनुकूल होने के बावजूद वह इस रूप से स्वीकार्य नहीं हैं। हालाँकि इस वर्ग के बच्चों के लिए प्रायः पत्रिकाएँ कुछ न कुछ छिटपुट रूप में प्रकाशित करती रही हैं। पराग पत्रिका अपने प्रकाशन के दौरान 'नन्हे मुन्नों के लिए' शीर्षक के अंतर्गत इस वर्ग के बच्चों का साहित्य प्रकाशित किया करती थी जिसे पाठकों से अपने नन्हें भाई-बहनों को सुनाने का आग्रह भी होता था। परंतु इधर की पत्रिकाओं में इस तरह की प्रवृत्ति नज़र ही नहीं आती।

किशोर बच्चों के लिए एकमात्र नियमित पत्रिका 'सुमन सौरभ' है। 'पराग' पत्रिका का स्तर भी किशोर बच्चों के अनुकूल था, परंतु वर्तमान में इसका प्रकाशन स्थगित है। किशोरों की पत्रिका के रुप में 'किशोर लेखनी' पत्रिका के भी कुछ अंक आए हैं। इसमें प्रकाशित रचनाएँ किशोर मानसिकता के अनुकूल तो है, परंतु इसका प्रकाशन नियमित नहीं है, और दूसरी तरफ़ इसमें बाल किशोर साहित्य के वैचारिक पक्ष पर अधिक ध्यान रहता है। किशोरों की पत्रिका के रूप में 'कच्ची धूप' के कुछेक अंक भी प्रकाशित हुए हैं।

दृश्य मीडिया के प्रसार के समानांतर बाल साहित्य में चित्र कथाओं का महत्व विशेष रूप से बढ़ा है। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न प्रकाशकों द्वारा चित्र कथाओं के विविध प्रस्तुतीकरण विभिन्न सीरीज़ों के अंतर्गत निरंतर हो रहे हैं। यह चित्रकथा साहित्य बच्चों के एक बड़े वर्ग के बीच लोकप्रिय है। परंतु चित्रकथाओं की कोई विशिष्ट बाल पत्रिका नहीं है। टिंकल नाम की एक पत्रिका अवश्य निकला करती थी, जिसमें बच्चों के लिए बच्चों के पसंद की कहानियों के आधार पर भी चित्रकथाएँ छपा करती थीं,

लेकिन वर्तमान में इसका प्रकाशन स्थगित है। यह दीगर बात है कि अँग्रेज़ी में उसका प्रकाशन नियमित रूप से हो रहा है।

हाँ, यह अवश्य है कि प्रायः बाल पत्रिकाओं में कुछेक चित्रकथाएँ नियमित रुप से छपा करती हैं। बाल हंस, नंदन, बाल भारती, चंपक, सुमन सौरभ, नन्हे सम्राट, लोटपोट, मधु मुस्कान, शिशु सौरभ आदि पत्रिकाओं में चित्रकथाओं के कुछ नियमित स्तंभ हैं। बाल हंस और चंपक के चित्रकथा विशेषांक भी निकलने शुरू हुए हैं।

इधर इतर भाषाओं के बाल साहित्य से बच्चों को परिचित कराने के प्रयास बहुत ही कम हुए हैं। पराग पत्रिका अपने प्रकाशन के दौरान विदेशी तथा अन्य भारतीय भाषाओं से अनूदित बाल कहानियाँ प्रायः छापा करती थीं। परंतु वर्तमान में कोई पत्रिका इस परंपरा को आगे बढ़ाती नहीं दीख पड़ती है। एकमात्र नंदन पत्रिका ही लंबे अरसे से अपने हर अंक में किसी न किसी विदेशी कृति का सार-संक्षेप प्रस्तुत किया करती है। विदेशी लोक साहित्य पर आधारित रचनाएँ भी इसमें प्रायः छापी जाती हैं। वस्तुतः इस दिशा में बाल पत्रिकाओं की उदासीनता खटकती है।

बाल किशोर साहित्य की परंपरा को अक्षुण्ण रखते हुए उसके विकास क्रम को समझा जा सके और उसमें निरंतर गुणात्मक परिवर्धन लाया जा सके, इसके लिए आवश्यक है कि इस साहित्य का समालोचनात्मक पक्ष भी सामने लाएँ। परंतु देखने में आया है कि हिंदी की स्तरीय पत्र-पत्रिकाएँ तो इस संदर्भ में लगभग उदासीन हैं ही, बाल पत्रिकाएँ भी कुछ विशेष करती नज़र नहीं आतीं।

प्रतिनिधि कही जाने वाली पत्रिकाएँ कुछेक बाल साहित्य पुस्तकों की केवल सूचनात्मक जानकारियाँ ही उपलब्ध कराती हैं। परंतु कुछ लघु बाल पत्रिकाओं ने बेहतर ढंग से समालोचनात्मक रूप में बाल साहित्य पुस्तकों की समीक्षाएँ अवश्य छापी हैं। इस संदर्भ में देवपुत्र, बालवाणी, बालदर्शन, लल्लू-जगधर बाल वाटिका और बाल साहित्य समीक्षा के नाम उल्लेख्य हैं। बाल साहित्य समीक्षा इनमें सर्वाधिक विशिष्ट है। यह पत्रिका नियमित रूप से बाल साहित्य की रचनाओं का प्रकाशन तो कराती ही है, बाल साहित्य पुस्तकों की बेहतर समीक्षाएँ भी छापती है। समय-समय पर यह पत्रिका महत्वपूर्ण बाल साहित्यकारों पर केंद्रित विशेषांक भी प्रकाशित करती है जिसमें उस बाल साहित्यकार के संपूर्ण साहित्यिक अवदान पर समालोचनात्मक निबंध प्रकाशित किए हैं। बाल साहित्य समीक्षा के अलावा किशोर लेखनी पत्रिका का योगदान भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। इसके कुछ अंक ही प्रकाशित हुए हैं, परंतु उनमें बाल किशोर साहित्य की रचनात्मक चेतना को समझने, परखने और दिशा देने का प्रयास करते निबंध प्राथमिकता से प्रकाशित हुए हैं। बाल साहित्यिक समीक्षा के लिए एक समय में चर्चित रही पत्रिका परिकल्पना का प्रकाशन भी इस बीच आरंभ हुआ है। बाल साहित्य समालोचना के लिए इससे निश्चय ही उम्मीद की जा सकती है।

हिंदी के महत्वपूर्ण दैनिक समाचार-पत्रों में बाल साहित्य के लिए परिशिष्ट तो हैं ही, वे प्रायः बाल साहित्य के विविध पहलुओं पर समालोचनात्मक निबंध भी प्रकाशित किया करते हैं, परंतु ये चर्चाएँ राष्ट्रीय फलक पर नहीं आ पातीं, क्योंकि प्रत्येक समाचार-पत्र के अपने अलग-अलग व्यावसायिक क्षेत्र हैं, जहाँ वे बिकते हैं और इसलिए उनमें प्रकाशित रचनाएँ भी उस क्षेत्र-विशेष के पाठकों तक ही सीमित रह जाती हैं।

साहित्य की स्तरीय पत्रिकाएँ तो इस दिशा में लगभग मौन हैं। 'धर्मयुग' और 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' में बाल साहित्य के परिशिष्ट प्रकाशित होते थे। परंतु आजकल 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' तो बंद है ही, 'धर्मयुग' का परिशिष्टि भी बंद होने से पहले अनियमित हो गया था। अन्य स्तरीय साहित्यिक पत्रिकाओं... हंस, वागर्थ, पहल, कादंबिनी आदि को इस संदर्भ में मानों कोई रूचि ही नहीं।

ऐसी स्थिति में प्रश्न यह उठता है कि इतनी सारी बाल पत्रिकाओं के रहते बाल साहित्य की परंपरा और स्थिति को समझने, परखने तथा विकास की दिशा तय करने के लिए बाल साहित्यकारों को किसी और का मुँह जोहने की क्या ज़रूरत है? हालाँकि कुछ समालोचक पूर्वोक्त वर्णित बाल पत्रिकाओं

में से चार-पाँच को छोड़कर अन्य किसी को महत्व नहीं देते। लेकिन यह बात भी शोचनीय है कि ये चार-पाँच इनी-गिनी पत्रिकाएँ, जो राष्ट्रीय स्तर की होने का दावा करती हैं और विश्व मंच पर भारतीय हिंदी बाल साहित्य का प्रतिनिधित्व करने में भी आगे-आगे हैं, किसी तरह की वैचारिक चर्चा में शामिल होने से पीछे रहना चाहती हैं तो आख़िर क्यों?

मुझे लगता है कि हिंदी की बाल पत्रिकाओं को बाल साहित्यालोचना का दायित्व गंभीरतापूर्वक स्वीकार करना होगा...भले ही इस वैचारिक चर्चा में उनके द्वारा प्रकाशित किया जाने वाला बाल साहित्य और उससे जुड़ी उनकी भूमिका ही क्यों न ख़ारिज हो जाए। यह वैचारिक चर्चा न केवल बाल साहित्य के दिशा-निर्धारण के लिए आवश्यक है, वरन् इसलिए भी ज़रूरी है कि इस तरह की चर्चाओं में शामिल होने का पाठकीय हक बाल किशोर वर्ग को निश्चय ही है, जिससे उन्हें अब तक लगभग वंचित रखा गया है।

## देखें पीछे नहीं, चलते जाएँ

**अक्षय गोजा**

देखें पीछे नहीं, चलते जाएँ
भावी है आँखों में, बढ़ते जाएँ

ज्वाला बदले की बनी भस्मासुर
ठंड-क्षमा से जै करते जाएँ

फूल भी, काँटे भी हैं जीवन में
फूल या काँटे हों, हँसते जाएँ

नाश-लीलाएँ तो चलती रहतीं
जग नए, नित नए बसते जाएँ

चोट छूए नहीं दिल को 'अक्षय'
आभामय मुख ही दिखते जाएँ

# फाँसी के दिन आप न आना बेबे जी....
## कहा था, भगत सिंह ने माँ से

(शहीद-ए-आज़म भगत सिंह जी की जन्मशताब्दी पर सभी भारतवासियों एवं भारतवंशियों की भाव-भीनी श्रद्धाजंलि)

**नरेश भारतीय**

अस्वस्थ होते हुए भी उन्होंने कभी अपना उल्लास और विनोद प्रियता नहीं खोई थी। सारा दिन प्रसन्न रहतीं। हँसती तो ऐसा महसूस होता कि उनकी हँसी में एक विशेष प्रकार की गहराई है। इसी में उनका महान व्यक्तित्व उभर कर सामने आता था। दिन भर सैंक ों लोग उनके दर्शन के लिए आते। उनके पाँव छूते और वे उठकर उनसे बातचीत का उपक्रम करतीं। आगत का स्वागत करतीं, अपना प्यार और आशीर्वाद उ ेल देतीं।

भारत की स्वतंत्रता की बलिवेदी पर अपने प्राण सहर्ष बलिदान कर देने वाले भगत सिंह की माँ श्रीमती विद्यादेवी जिन्हें परिवार में सभी बेबे जी कह कर संबोधित करते थे। भगत सिंह की बेबे जी हम सब की बेबे जी ही थीं। उनकी पोती वीरेन्द्र के साथ १९६८में अपने विवाह के पश्चात् हम दोनों उनका आशीर्वाद लेने गए थे। उस समय वे जलंधर में सिविल अस्पताल के सामने सरकारी रेस्ट हाउस में स्वास्थ्य लाभ कर रही थीं। काफी रुग्णता दिखाई देती थी उनके चेहरे पर लेकिन पचासी वर्ष की आयु में भी उनके शरीर का मजबूत गठन जवानी में उनके तपोनिष्ठ जीवन की झलक देता था।

हम वीरेन्द्र की बुआ बीबी अमर कौर के साथ उनसे मिलने गए थे। हमें देखते ही बेहद खुश हुईं और बोली, 'मैं कहनी आं, तैनु दादी याद नहीं औं दी सी। मैं सोचां कीह होआ नरेस ते वरिन्दर आ क्यों नहीं रए। हुन तुसीं आ गए ओ तां मैं बिलकुल ठीक हो गई आं।' और उन्होंने झट हम दोनों को गले लगा कर बहुत प्यार दिया। देर तक छाती के साथ लगाए रखा।

उनका यह ला -प्यार और दुलार भरी बातें दिल के कोमल तंतुओं का मधुर स्पर्श कर रही थीं। बरबस आँखें भीग गईं। मेरे मन मस्तिष्क में १९३१ के वर्ष में हुए घटनाक्रम ने उथल-पुथल मचा दी। मैं वीर-प्रसूता माँ के पास हूँ, उनका असीम प्यार पा रहा हूँ। कैसा महसूस हुआ होगा बेबे जी को जब बीतता हुआ हर क्षण उनके महासंकल्प सिद्ध पुत्र भगत सिंह को फाँसी के फंदे के निकट ले जा रहा था? मैं खुद को रोक नहीं पाया और साहस कर पूछ डाला माँ से, 'बेबे जी मैं कुछ प्रश्न पूछना चाहता हूँ आपसे।'

'पूछो बेटे क्या पूछना चाहते हो?' अपनी सहज मुस्कान के साथ वे बोलीं।

'आपको भगत सिंह के समय के युवकों और आज के युवकों में क्या अंतर लगता है?' वे हँस प ीं और बोलीं, 'भगत सिंह का समय आज के समय से भिन्न था। उस समय युवकों में जोश था। आज़ादी प्राप्त करने का लक्ष्य सामने था। वैसे भी वातावरण में इतना तनाव व्याप्त था कि प्रत्येक युवक कुछ करने को त पता था। पर आज तो नौजवान नाम के हैं। उस समय के युवकों में शक्ति संचय का शौक था, तो आज युवकों में उद्दंडता अधिक है।'

बेबे जी भावावेश में अपनी बात कहती चली गईं, 'आज विदेशी नहीं हैं। गोली नहीं चलती, बम नहीं फूटते। उस पर भी नौजवानों को चाहिए कि वे समाज में फैलती जा रहीं कुरीतियों के ख़िलाफ मोर्चा बनाएँ। यह देखना चाहिए कि इतने बलिदानों के बाद प्राप्त हुई आज़ादी का दुरुपयोग न हो। आजकल के युवक यदि कुछ कर सकते हैं तो यही कि भ्रष्टाचार, बेईमानी और असत्य का जहाँ भी बोलबाला हो वहाँ तन जाएँ। सरकार और नेताओं को सुधार की प्रवृत्ति से काम करना चाहिए, न कि स्वार्थों की पूर्ति के लिए अपने कर्तव्य की अवहेलना।' माता जी भावनाओं के हिमालय पर थीं और मैं उनकी बात की गहराइयों को समझने में तल्लीन था। तभी उन्हें खाँसी छि  गई और वे चुप हो गईं। मैं वहीं बैठा उनके वक्तव्य पर मनन करता रहा। सोच रहा था बुढ़ापे से जर्जर शरीर, पर इसमें आत्मा कितनी बलवान है। सचमुच ही वीर-प्रसूता इस माँ में कितनी शक्ति है। विचार चिंतन में कितना प्रबल प्रवाह है।

अपने महाबलिदानी पुत्र भगत सिंह के संबंध में माँ ने बताते हुए कहा, 'उसी की स्मृति में जीवित हूँ। उसी के पुण्य प्रताप से इस आसन पर बैठी हूँ। लेकिन मुझे एक ही दुःख है। मुझे उम्मीद

थी कि आखिरी मुलाकात हो सकेगी पर वह न हो सकी। फाँसी के कुछ दिन पहले ही मुलाकात में भगत सिंह ने मुझसे कहा था, 'फाँसी के दिन आप न आना बेबे जी। आप रोएँगी, बेहोश हो जाएँगी। लोग आपको सँभालने में लगेंगे या लाशें लेंगे। कुलवीर को भेज देना। अगर जेल वालों ने दीं तो वह लाश ले जायेगा।'

भगत सिंह के अपनी माँ से कहे ये अंतिम शब्द उनकी संवेदनशीलता को मुखरित करते हैं। उनकी निर्भीकता के साथ उनके व्यक्तित्व की ऐसी विशिष्टता को प्रस्तुत करते हैं जिसमें एक ऐसा महापुरुष हमारे समक्ष सहसा आ ख ा होता है जिसने अपने शरीर के प्रति सहज मानवीय मोह को बेरहमी से त्याग कर अपने ह्दय और मस्तिष्क का सिर्फ राष्ट्ररक्षा एवं राष्ट्रहित के लिए अंतिम क्षण तक उपयोग किया। उनका बलिदान उनकी दी गई फाँसी से जो ा जाता है। पर बाल्यावस्था से ही पारिवारिक संस्कारों का प्रभाव और देश-दशा ने उन्हें किस तरह अपना जीवन राष्ट्र को समर्पित कर देने की राह पर अग्रसर किया था इसे आज गहनता के साथ समझने की आवश्यकता है।

भगत सिंह और उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि पर सबसे प्रामाणिक विवरण उनकी भतीजी सुप्रसिद्ध लेखिका वीरेन्द्र 'सिंधु' ने १९६८ में अपनी सर्वप्रथम प्रकाशित पुस्तक 'युगदृष्टा भगत सिंह और उनके मृत्युंजय पुरखे' में दिए हैं। तब इसका प्रकाशन ज्ञानपीठ ने किया था और बाद में राजपाल एंड संस ने इसके आगामी संस्करण छापे। भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव की फिरोजपुर (पंजाब) के निकट हुसैनीवाला सीमा पर बने स्मारक समाधि पर जाकर उन्होंने अपने तायाजी को स्मरण करते हुए इसकी प्रथम प्रति समर्पित की थी। तब से अनेक लेखकों ने इस ग्रंथ के महत्वपूर्ण अंशों को उद्धृत किया है।

२८सितम्बर से भगत सिंह की जन्मशताब्दी वर्ष का प्रारम्भ हुआ था। अनेक पुस्तक-पुस्तिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं। उन्हें स्थान-स्थान पर श्रद्धांजलि देने का क्रम बना हुआ है। २३मार्च को उनके बलिदान दिवस पर फिरोजपुर में उनकी समाधि और जलंधर के निकट उनके पैतृक गाँव खटक कलाँ में कार्यक्रमों का आयोजन प्रतिवर्ष होता है जिनमें भारत के शीर्षस्थ नेता, राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री समेत शामिल होते हैं। पर मुझे लगता है भगत सिंह के बलिदान के साथ जु ी उनकी उत्कृष्ट विचार श्रृंखला पर चिंतन-मनन किया जाना अधिक समीचीन होगा। तदर्थ वीरेन्द्र जी की ही पुस्तक में से कुछ महत्वपूर्ण अंश प्रस्तुत हैं। वे लिखती हैं -

'१९१९ में जब महात्मा गाँधी ने भारत की राजनीति के द्वार पर अपने कोमल बलिष्ठ हाथों से जोरदार दस्तक दी, भगत सिंह सातवीं क्लास में थे। असहयोग की आँधी ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती थी, उनकी स्फूर्ति उभरती जाती थी। असहयोग के पाँच बहिष्कारों में स्कूलों का बहिष्कार भी था। भाषणों में सरकारी अदालतों और नौकरियों के बहिष्कार के साथ जोशोखरोश से स्कूल छो देने की बात कही जाती थी। भगत सिंह जुलूसों में जाते थे और अपने भीतर उस आवाज़ को गंभीर घोष के स्वर में गूँजता पाते थे। उनके ही घर में भारतमाता सोसायटी का आन्दोलन उठा था। वे नन्हें शिशु थे जब गदर पार्टी का आन्दोलन हुआ था।

तभी १३ अप्रैल १९१९ को अमृतसर में जलियाँवाला कांड हो गया। भगत सिंह अपनी उम्र के बारहवें साल में थे।. . . .अमृतसर में आतंक की आँधियाँ चल रही थीं। दमन का नगा ा बज रहा था। फौजी लोग नमस्ते की जगह गोली का उपयोग करते थे। पिटाई, गिरफ्तारी, खून और लाश वहाँ के दृश्य थे। उस समय कैसे वे जलियाँवाला बाग पहुँचे होंगे। कैसे वहाँ से मिट्टी लेकर लौटे होंगे और उनके खून में कैसे-कैसे उफान आये होंगे।. . . .सोचती हूँ, उस दिन किसी को और स्वयं उन्हें भी क्या पता था कि उनका बलिदान एक दिन राष्ट्रीय बलिदानों का प्रतीक हो जायेगा और वे शहीदों के शहीद, शहीदे-आज़म कहलायेंगे।. . . .वे क्रांतिकारी शहीद के सिवा और कुछ हो ही नहीं सकते थे, क्योंकि वे उस वंश का अमृतफल थे, परिवर्तन, उथल-पुथल, बगावत, संघर्ष, बेचैनी, विध्वंस और क्रांति ही जिसके सपनों का श्रृंगार थे।'

अजय घोष ने भगत सिंह की शहादत के बाद कहा था, 'जो व्यक्ति कभी भी उनसे मिला, उस पर उनकी असाधारण प्रतिभा तथा ब प्पन का गहरा प्रभाव प ा। इसका कारण यह नहीं था कि वे बहुत अच्छे वक्ता थे वरन् यह कि उनकी बातों में इतना जोश, इतना बल और ऐसी शालीनता होती थी कि कोई भी व्यक्ति उनसे मिलने पर उनसे प्रभावित हुए बिना रह ही नहीं सकता था।'

वीरेन्द्र सिंधु की पुस्तक युगदृष्टा भगत सिंह से एक महत्वपूर्ण तथ्य यह उजागर होता है कि नौजवान भारत सभा ने पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा १९२६ के आरम्भ में की थी जबकि काँग्रेस ने ऐसी

घोषणा १९२७ में की थी। इस सभा का उद्देश्य था क्रांतिकारी दल के लिए जोशीले सदस्यों को चुनना और इसी काम के लिए भगत सिंह ने लाहौर के विद्यार्थियों की भी एक यूनियन गठित की थी। भगत सिंह के इन प्रयत्नों का उद्देश्य था - जनजागरण और इस जागरण का समय पर उपयोग करने के लिए क्रांतिकारी दल को मज़बूत करना।

भगत सिंह ने भारत राष्ट्र की एकता का स्वप्न सँजोया था। एक ऐसा राष्ट्र जो पराधीनता की बे ियों से मुक्त हो, ऐसा राष्ट्र जो स्वतंत्र हो यानि परधुन पर अपना जीवन न जीये, किसी के शोषण का शिकार न हो। ऐसा राष्ट्र जो टूटे नहीं, बिखरे नहीं, विभाजित न हो। एकजुट रहे, सक्षम हो, सम्पन्न हो। भगत सिंह अपने राष्ट्रीय लक्ष्य की पूर्ति की दिशा में कैसे कृतत्व क्रम में से गुज़रे और युग-युगों तक प्रेरणा देने वाले अद्वितीय युगपुरुष बन गये जगज़ाहिर है। लेकिन उनके संकल्प के पीछे उनके चिंतन और उसकी दिशा को समझने की आज नितांत आवश्यकता है।

भगत सिंह को खेमों में बंद करके नहीं देखा जा सकता। उनके महान क्रांतिकारी चिंतक व्यक्तित्व को मात्र फाँसी के फंदे तक पहुँचने तक नहीं, अपितु उसके बाद के स्वाधीनोत्तर काल में समुचित ढंग से आँकने की आवश्यकता है। इस दृष्टि से आँकने की आवश्यकता है कि यदि वे आज होते तो क्या सोचते और क्या करते। उनकी जन्मशताब्दी वर्ष में आयोजित होने वाले समारोहों में उनके जीवन, उनके व्यक्तित्व के सभी आयामों को भारत की वर्तमान दशा और दिशा के परिप्रेक्ष्य में देखने समझने की आवश्यकता है।

## देश-प्रेम

**स्नेह ठाकुर**

हर इंसा को घर से लगाव होता है,  
छोटा हो या ब ा सम्बन्धों का खिंचाव होता है।  
सब सम्बन्ध देश-प्रेम के आगे छोटे प  जाते हैं,  
राष्ट्र की आन के आगे सब बौने हो जाते हैं।  
जहाज़ के कप्तान को भी प्यार होता है घर से,  
पर डूबने की दशा में जहाज़ नहीं छो ता वो डर से।  
गरज़ते तूफाँ, लरज़ती लहरें, इन्तज़ार करते कगारों से,  
कह दो कि हम डरते नहीं हैं बलिदानों से।  
संघर्षों से डर, जीना न छो ा है, न छो ेंगे कभी,  
नवप्रभात की जननी कालिमा है, जानते हैं सभी।  
जिस देश में स्वयं को कुर्बान करने वाले होते हैं  
उस देश में देश-प्रेम से ओत-प्रोत पीढ़ियाँ जन्मती हैं।

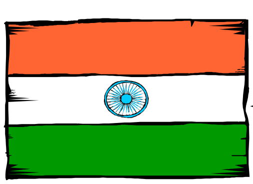

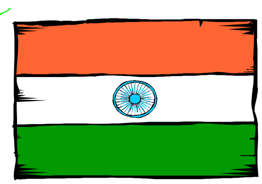

# आवाज़

**बनाफ़र चन्द्र**

'कमला बिटिया विधवा हो गई।' मौसी बुदबुदाई और सिसकने लगी। मौसी की बुदबुदाहट और सिसकी इतनी धीमी थी कि दूसरा कोई सुन नहीं पाया। उसी के कानों तक सीमित रह गई।

शहर की लम्बी-चौ ी कोठियों से नज़र फिसलती हुई 'बसंत कुंज' कोठी में रहने वाली कमला दीदी पर आकर ठहर जाती है। छुटपन से ही मैं कमला दीदी को इस रूप में देखता आया हूँ, जिस रूप में अभी वो हैं। गोरा रंग, गोल मुख ा, भूरी-भूरी आँखें, लम्बे-लम्बे केश और सफेद सा ी-ब्लाउज। बस इतनी-सी पहचान है कमला दीदी की। इस बसंत कुंज कोठी में कमला दीदी ही एक ऐसी हैं जिनके साथ बैठ कर घंटे-दो-घंटे आत्मीय ढंग से बात की जा सकती है। बाकी इस कोठी में रहने वालों के पास न बात करने की फुर्सत है, न किसी के पास उठने-बैठने की। कोई सुबह निकलता है तो रात को आता है और कोई रात के अँधेरे में निकलता है तो हफ़्तों बाद।

कमला दीदी अब बूढ़ी हो चली हैं। लेकिन उतनी बूढ़ी नहीं हो पाई हैं, जितना उन्हें अभी तक हो जाना चाहिए था। अभी उनके गोरे चेहरे पर ताम्बे की चमक है और भूरी आँखों में चाँदी की तरह तेज़। बीते दिनों के चेहरे को वो आज भी दूर से पहचान लेती हैं। गाँव की एक-एक बात और घटना उनके ज़ेहन में उतनी ही ताज़ी है जितना कि पहले थीं। वो एक भी बात और चेहरा नहीं भूली हैं।

उनको खेत-खलिहान याद हैं, बाग-बगीचे याद हैं, आहर-पोखर याद है, और उनको याद है वह धोबी-घाट, जहाँ सूखा करते थे उनके तन के कप े। वह जंगल और दालान अभी भी नहीं भूली हैं कमला दीदी, दिन-भर गाय-भैंस चराने के बाद जहाँ शाम को थकान के हवाले कर देता था अपने को कन्हाई। दीदी अँधेरे में उसके लिए भोजन लेकर जातीं और ब े प्यार से उसे खिलातीं। तब कमला दीदी के साथ मैं होता था।

दीदी को सब कुछ याद है। उस बाँसुरी की आवाज़ आज भी दीदी के कानों में गूँजती है जिसे गाय-भैंस चराते वक्त किसी पे  के नीचे बैठ कर बजाया करता था कन्हाई।

मुंबई जैसे व्यस्त शहर में रहते हुए भी दीदी के कान बाँसुरी की आवाज़ की तरफ़ ही लगे रहते हैं। चाहे वह आवाज़ समुद्र के किनारे से आ रही होती है या फिर गली-मोहल्ले से।

दीदी बूढ़ी हो रही हैं। उनके लम्बे-लम्बे बाल सन की तरह सफेद होते जा रहे हैं। लेकिन एक दर्द, एक चुभन अभी भी उनके सीने में यथावत् है। कुछ क्षण के लिए वो अपने-आप को भूल सकती हैं, लेकिन कन्हाई और बाँसुरी की आवाज़ नहीं भूल सकतीं।

कमला दीदी मौसी की कथाओं की परियों में से एक परी हैं जो बूढ़ी होते जाने के बावजूद खूबसूरत और सफेद झक हैं। उन्होंने इन्द्रलोक और स्वर्गलोक तो नहीं देखा, लेकिन मृतलोक में रहते हुए बाकी सब कुछ देख लिया है। महसूस किया है और जान लिया है।

मुंबई के जिस मोहल्ले में वो रहती हैं वह किसी स्वर्गलोक और इन्द्रलोक से कम नहीं है। ब े-ब े सेठ, व्यापारी, तस्कर और अभिनेताओं की ब ी-ब ी कोठियाँ हैं। स्वर्ग की तरह हर सुख-सुविधा है। इन्द्रलोक की तरह चमचमाती रोशनियाँ हैं, चमक-दमक है। उन्हीं कोठियों के बीच एक ब ी कोठी उनके अपने भाई की भी है। उसी कोठी के एक कमरे में रहती हैं कमला दीदी। स्वर्ग की तरह सुख-सुविधा होने के बावज़ूद उनका मन गाँव, जंगल, नदी और पहा ियों में भटकता रहता है। बार-बार नदी के पानी में गोता लगा आता है उनका मन। और बार-बार उस दरख्त के नीचे जा बैठती हैं कमला दीदी, जिस दरख्त की छाँव में बैठ बाँसुरी बजाया करता था कन्हाई।

वो अपने कमरे में बैठे-बैठे ही पहुँच जाती हैं जंगल और घंटे-दो-घंटे के लिए खो जाती हैं जंगल, पहा , नदी-नालों और कन्हाई की बाँसुरी की धुन में। वो सो जाती हैं, बेसुध जंगल की सरसराती हवाओं के बीच, चरमराती पत्तियों के साथ कन्हाई की बाँहों में।

कई आवाज़ देने के बाद उनकी निद्रा टूटती है और वो झुँझला उठती हैं, 'मुझसे मेरा गाँव छीना, बचपन छीना, बाग-बगीचा छीना, आहर-पोखर छीना, नदी-नाला छीना, जंगल-पहा  छीना, अब क्या बचा है मेरे पास, जो मेरा कान खा रहे हो? घंटे-दो-घंटे भी चैन से जीने नहीं देते।'

कमला दीदी की झुँझलाहट सुन सभी चुप हो जाते हैं। फिर इन्हें हफ़्तों कोई नहीं टोकता। चाहे वो कई घंटों तक अपने कमरे में चुपचाप क्यों न बैठी रहें।

छुटपन से मैं कमला दीदी के साथ रहा। वो जहाँ भी जातीं मुझे अपने साथ ले जातीं। वो मुझे अपना कवच समझती हैं। तब कमला दीदी गाँव में थीं। गाँव में उनका अपना बहुत ब ा घर था, दालान था, माता-पिता थे, भाई थे और ढेर सारी गाय-भैंसे थीं, कई जो ी लम्बे सींग वाले बैल थे।

भरा-पूरा परिवार होने के बावजूद उनका लालन-पालन देख-रेख मौसी के जिम्मे था। मौसी रसोइया थीं। चौके से फुर्सत पाने के बाद मौसी उन्हें नहलाती-धुलातीं, उनको कप े पहनातीं और उनके कमरे में ले जाकर भोजन परोस देतीं। एक तरह से मौसी कमला दीदी की पालक थीं। अपनी माँ के कमरे में जाने से उनको मनाही थी।

कमला दीदी तब सोलह या सत्रह साल की थीं और मैं आठ साल का। मौसी जब भी रात का भोजन थाली में परोस कर दालान की तरफ निकलतीं, कमला दीदी मौसी के हाथ की थाली झटक कर अपने कब्जे में कर लेतीं और मुझे साथ लेकर दालान पर पहुँच जातीं। तब कन्हाई थकान से चूर आँखें बंद किये दालान के एक कमरे में लेटा रहता था। कमला दीदी बहुत प्यार से उसे जगातीं, कुछ बातें करतीं और खाना खिलाकर लौट आतीं।

कमला दीदी हँस-हँसकर कन्हाई से क्या बातें करतीं, उस वक्त मैं समझ नहीं पाता था लेकिन इतना जरूर समझ जाता था कि बार-बार वे बाँसुरी बजाने के लिए कन्हाई से आग्रह करती थीं और कन्हाई मना कर देता था। वह कहता, 'बीबीजी, बाँसुरी सुनना है तो जंगल आ जाया करो। यहाँ बजाऊँगा तो ब े बाबू की डाँट खानी प ेगी। जंगल में मैं आपको जी भर बाँसुरी सुनाऊँगा।'

दीदी कहतीं, 'जंगल आने को तो इच्छा बहुत होती है। जब तुम्हारी बाँसुरी की आवाज़ कानों में प ती है तो मन मचल उठता है। सोचती हूँ, नदी-नाला पार करके तुम्हारे करीब आ जाऊँ और घंटों तुम्हारे पास बैठकर बाँसुरी सुनती रहूँ। लेकिन कहाँ ऐसा हो पाता है सिर्फ़ सोच कर रह जाती हूँ। छुटपन की बात कुछ और थी, क्या अब मैं घर की चारदीवारियों को लाँघ पाऊँगी।'

'लाँघ क्यों नहीं सकतीं, आपके लिए यह कोई मुश्किल काम नहीं है चाहें तो ऐसा आप कर सकती हैं।'

'चाहती तो बहुत हूँ पर ऐसा कर नहीं पाती हूँ। डर लगता है। दालान तक आने के लिए कितना छल-प्रपंच करना प ता है। अँधेरे और मौसी का लाभ उठाकर चली आती हूँ, ताकि सामने बिठाकर तुम्हें खाना खिला सकूँ। कुछ देर बात कर सकूँ। फिर दीदी मुझे संबोधित करके कहतीं, यही मेरा कवच है, इसे ही ओढ़े फिरती हूँ।'

दीदी की बात सुन कन्हाई चुप हो जाता और लौटते वक्त दीदी को एकटक देखता रहता, जैसे उसकी कोई प्रिय वस्तु उससे छीनी जा रही है। तब कन्हाई की आँखों की भाषा मैं पढ़ नहीं पाता था। कमला दीदी पढ़ लेती थीं और पढ़ कर उदास हो जाया करती थीं। दीदी के उदास होने के कारण भी मैं नहीं समझ पाता था। मौसी समझ पाती और दीदी को अपनी छाती से चिपका लेती।

कन्हाई को खाना खिलाकर लौटते वक्त एक रात दीदी की रेशमी चादर दालान पर ही कंधे से फिसल कर गिर गई। सुबह ब े बाबू, दीदी के पिता, ने खूब शोर मचाया। मौसी को खूब डाँट प ी। लेकिन मौसी दीदी को बचा ले गई। उस दिन भी दीदी का कवच मुझे ही बनना प ा।

ब े बाबू से मौसी ने कहा, 'ब े बाबू, इतना काहे को शोर मचावत हो, मोर बेटवा चादर लेकर वहाँ चला गवा होगा। बिटिया तो कभी घर से बाहर कदम ही नाही रखती।'

ब े बाबू चुप हो गये और भुनभुनाते हुए दालान पर लौट आये। दीदी और मौसी डाँट खाने से बच गईं। लेकिन दूसरे दिन जब मैं दालान पर गया तो ब े बाबू ने मेरे कान पक  लिये, 'क्यों रे बदमाश, तुम कमला की कीमती चादर लिए घूमते-फिरते हो? आइंदा इस तरह की बातें देख-सुन लीं न, तुम्हारी चम ी उधे  लूँगा। अभी बेंत भर का है और इतनी बदमाशी? ब े बाबू ने कहा और गाल

पर एक थप्प ज दिया। मैं ब ` बाबू को क्या जवाब देता, थप्प खाकर चुपचाप लौट आया। किसी से कुछ नहीं कहा। दीदी से भी यह बात मैं छुपा गया।

माँ की मृत्यु के बाद मौसी ने मुझे गोद ले लिया था। मैं गोद लिया मौसी का बेटा हूँ। मौसी का अपना कोई नहीं है। एक छोटी ल की थी, कब की मिट्टी के हवाले हो गई। मौसा भी कब का श्मशान पहुँच गए। मौसी के लिए अब सब कुछ मैं ही हूँ। मौसी की गोद में मैं जब भी अपना सिर रख कर सोता हूँ एक अजीब तरह के सुख का मुझे अनुभव होता है। मुझे ऐसा कभी नहीं लगता कि यह गोद माँ की नहीं, मौसी की है। होश सँभाला तो कमला दीदी का साथ पाया। एक क्षण के लिए भी कमला दीदी ने मुझे तन्हाई महसूस नहीं होने दी। जितना स्नेह मुझे मौसी ने दिया, दीदी ने भी उससे कम स्नेह नहीं दिया।

दीदी अब बूढ़ी हो रही है। पहले मैं उसका कवच था, अब लाठी हूँ। पहले मुझे ओढ़े फिरती थी, अब मुझे टेकती फिरती है। उनको जहाँ भी जाना होता है उनका एक हाथ मेरे कंधे पर होता है। उनके बुढ़ापे का सहारा मेरा कंधा है। वो कहती हैं, 'बसंत, मरने के बाद भी तुम्हारे ही कंधे पर श्मशान तक जाऊँगी।'

पता नहीं सुविधाओं से दीदी को क्यों परहेज़ है। वो अपने भाई की विदेशी कार में कभी नहीं बैठतीं। कमरे में बढ़िया पलंग और फोम का गद्दा होने के बावजूद वो चटाई बिछाकर फ़र्श पर नीचे ही सोती हैं। भोजन भी सादा और मामूली करती हैं।

उस दिन जंगल से आती हुई बाँसुरी की आवाज़ ने दीदी को बैचैन कर दिया। सुबह से ही कन्हाई बाँसुरी बजाने में तल्लीन था। और दीदी सुबह से ही बेचैन नज़र आ रही थीं। कभी इस कमरे से उस कमरे में, कभी आँगन में आकर ख ी हो जातीं, तो कभी दरवाज़े पर। बार-बार उनकी आँखें घर से निकल कर जंगल में बाँसुरी बजाते कन्हाई पर जा कर टिक जातीं। मैं समझ नहीं पा रहा था कि दीदी को क्या हो गया।

मौसी चुप थी। वह दीदी की बेचैनी को भीतर तक महसूस कर रही थी। जब दीदी की बेचैनी मौसी से देखी नहीं गई तो दीदी के कान में धीरे से बोली, 'बिटिया, बसंत को लेकर पिछवा ` से निकल जा। यहाँ मैं सँभाल लूँगी। किसी को कुछ भी पता नहीं चल पायेगा। लेकिन जल्द लौट आइयो।'

दीदी ने जल्दी-जल्दी कंघी की, रेशमी चादर ओढ़ी और मुझे साथ ले पीछे के दरवाज़े से जंगल की तरफ निकल गईं।

दीदी ने पहली बार घर से बाहर जंगल की तरफ कदम रखा था। उनका दिल ध क रहा था और टाँगें काँप रही थीं। लेकिन बाँसुरी की आवाज़ उन्हें अपनी तरफ खींचे लिए जा रही थी। ध कते दिल और काँपते कदमों के साथ मेरा हाथ पक ` दीदी नदी और छोटी पहा ी पार करती हुई तेज कदमों से आगे बढ़ रही थीं। हवा का तेज झोंका आता और उनकी रेशमी चादर और आँचल को उ ा देता। दीदी चादर और आँचल सँभालती और आगे बढ़ जातीं। कभी-कभी मु कर भी एक नज़र देख लेतीं।

छुटपन के बाद दीदी पहली बार जंगल की तरफ कदम रखी थी। तब उन पर कोई बंदिश नहीं थी। बेरोक-टोक अपनी सहेलियों के साथ जंगल निकल जाती थीं। और नदी-पहा लाँघ-फलाँग कर चौक ी भरती हुई घर लौट आती थीं। छोटी नदी के झिलमिल पानी में घंटों वो अपनी सहेलियों के साथ अठखेलियाँ करतीं, पहा ी के छोटे गुफों में आँख-मिचौलियाँ खेलतीं, हँसती-खिलखिलाती और धोबी-घाट पहुँच जातीं। जहाँ उनके तन के छोटे-छोटे कप ` गबरू धोबी नदी के पानी में खँगाल-खँगाल कर धो रहा होता था। वो अपने सफेद झक्क कप ों को देखतीं ओर खिलखिला उठतीं। उस वक्त उनके साथ मैं नहीं, उनकी हम-उम्र सहेलियाँ हुआ करती थीं। कभी-कभी वो नदी-पहा ी पार करके जंगल पहुँच जाया करती थीं और कन्हाई के साथ गाय-भैंसों के पीछे-पीछे घूमती-फिरतीं। कन्हाई उन्हें हर पे , पंछियों का नाम बताता, पहचान कराता और दीदी के साथ घुल-मिलकर बातें करता, हँसता-खिलखिलाता और बाँसुरी से टूटी-फूटी राग निकालता। कभी-कभी दीदी कन्हाई की बाँसुरी के छेदों पर अपनी अँगुली रख देतीं और खिलखिला प तीं।

दीदी ज्यो-ज्यों ब ी होती गईं, उन पर बंदिशें लगती और बढ़ती गईं। और धीरे-धीरे घर से उनका निकलना बंद हो गया। दीदी के साथ कन्हाई भी ब ा होता गया और उसकी बाँसुरी सधती गई। दीदी और कन्हाई के साथ-साथ उसकी बाँसुरी की आवाज़ भी तेज और जवान होती गई और दीदी के मन में गहरी धँसती गई। जिस दिन कन्हाई की बाँसुरी की आवाज़ दीदी के कानों तक नहीं पहुँचती, उस दिन दीदी उदास-उदास रहतीं। उनका मन रोने-रोने को हो आता। मुझसे पूछ बैठतीं, 'आज कन्हाई को क्या हो गया? उसकी बाँसुरी कहीं खो गई क्या?' मैं अनजान क्या जवाब देता। मेरी चुप्पी से दीदी की पी  और उदासी और भी बढ़ जाती।

और जिस दिन कन्हाई कोई मधुर तान छे  देता, दीदी बेचैन हो उठतीं। और दिन-भर बेचैन रहतीं। बार-बार उनका मन जंगल की तरफ भाग जाता। लेकिन दरवाज़े के बाहर कदम रखने की हिम्मत वो जुटा नहीं पातीं। उस दिन मौसी के कहने और साहस बँधाने से दरवाज़े से बाहर निकलीं और मुझे साथ लेकर बेतहासा जंगल की तरफ भागी जा रही थीं।

कन्हाई एक मोटे और घने दरख्त के नीचे बाँसुरी की धुन में खोया हुआ था। आँख बंद कर बाँसुरी बजाने में इस तरह तल्लीन था कि उसे यह भी पता नहीं चला कि दीदी कब आईं और उसके करीब बैठ गईं।

बाँसुरी की मधुर आवाज़ धीरे-धीरे दीदी के भीतर उतरने लगी और वो अपनी सुध खोती चली गईं। बाँसुरी सुनते-सुनते दीदी की आँखें मुँद गईं और कन्हाई की जाँघ पर सिर रख कर वो बेसुध हो गईं। दीदी को इस स्थिति में देख कर मैं अवाक् रह गया। मेरे छोटे से दिमाग में बहुत-सारी बातें उम -घुम  गईं। कन्हाई बेसुध हो बाँसुरी बजाता रहा और दीदी उसी तरह आँखें मूँदे प ी रहीं।

इसी तरह दीदी को जब भी मौका मिलता मुझे साथ लेकर पीछे के रास्ते से जंगल निकल जातीं और घंटों कन्हाई की जाँघों पर सिर रख कर बेसुध प ी रहतीं। एक दिन जंगल के रास्ते एक राहगीर को आते देख मेरी ध कन बढ़ गई। क्या करूँ और क्या न करूँ, इसी उधे -बुन में वह करीब आ गया। उसे पहचान कर मैंने अपने को एक पे  की ओट में छिपा लिया। वह राहगीर आया, एक-दो मिनट रुक कर दीदी और कन्हाई को देखा और बिना कुछ बोले आगे बढ़ गया।

यह देख कर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। वह राहगीर दूसरा कोई नहीं, ब े बाबू थे। दीदी की बीमार माँ की दवा लेने गये थे और उसी रास्ते लौट रहे थे। उनके जाने के बाद मैं पे  की ओट से दौ  कर आया और दीदी को झकझोर दिया। दीदी ह ब ाकर उठ बैठीं। कन्हाई भी उठ कर ख ा हो गया। बाँसुरी की राग टूट गई। कन्हाई दीदी को सामने देख दंग रह गया। वह एकटक दीदी को देखता रहा, लेकिन उसके मुँह से एक भी शब्द बाहर नहीं निकला। वह जो कुछ देख रहा था वह सपना था या सच, फ़र्क करना उसके लिए मुश्किल था।

दीदी भी कन्हाई को एकटक निहारे जा रही थीं। उनके भी मुँह से कोई शब्द नहीं फूट रहे थे। सिर्फ़ आँखें कन्हाई के चेहरे पर टिकी हुई थीं। दीदी एक कदम आगे बढ़ीं और कन्हाई से लिपट गईं। बहुत देर तक लिपटी रहीं। मुझे लगा कि दीदी आज कुछ निर्णय करके आई हैं तभी यह सब कुछ अनहोनी-सी हो रही है। दीदी कन्हाई से अलग हुईं और झुक कर उसके चरणों की धूल माँग में भर ली।

दीदी का यह पागलपन देख मैं चीख प ा, 'दीदी जल्दी घर लौट चलो, वर्ना कोई बहुत ब ी घटना घट जायेगी।'

मुझे लेकर दीदी घर की तरफ चल प ीं। जंगल, नदी, पहा ों को लाँघते हुए पीछे के रास्ते से हम ब े बाबू के आने के पहले ही घर में दाखिल हो गये। दीदी को देख मौसी की साँस में साँस आई। उसने जल्दी से दीदी का कमरा खोल दिया।

ब े बाबू मकान में कदम रखते ही गुस्से से चीख प े, 'कमला कहाँ है?'

मौसी समझ गईं कि ब े बाबू की नज़र आते या जाते वक्त कमला पर प  गई है। तभी तो इस तरह चिल्ला रहे हैं।

'बिटिया तो अपने कमरे में है। अभी नहा-धोकर भोजन पर बैठी है। कुछ काम है क्या?' मौसी ने इस तरह कहा कि ब े बाबू आगे कुछ कहे या पूछे बिना दालान पर लौट गये।

लेकिन मौसी की बातों से वो संतुष्ट नहीं हो पाये। होते भी कैसे? जिस सत्य को वो अपनी आँखों से देख कर आये थे, भला उसे कैसे झुठला सकते थे। फिर वो मौसी की इस अर्थहीन बातों

पर कैसे विश्वास कर लेते कि कमला बिटिया अपने कमरे में है। दिन-भर वो अपने-आप से ल ते रहे और शाम होते-होते दीदी की तरह उन्होंने भी एक पुख्ता निर्णय ले लिया।

शाम को डरे-सहमे मैं दालान की तरफ गया तो ब े बाबू के सामने भुआली बैठा था। उसे देख कर मेरा कलेजा धक् से रह गया। भुआली के बारे में मेरे पास जहाँ तक जानकारी थी, उस आधार पर वह अच्छा आदमी नहीं था। ब े बाबू को जब भी कोई घटिया काम करना होता भुआली को बुला कर उसके जिम्मे सौंप देते। उनके सामने बैठा उसे देख मेरे मन में एक खटका हुआ। लेकिन मैं उसे दबा गया। कमला दीदी को मैंने कुछ नहीं बताया। बस यही एक अपराध मेरे मन को आज तक कचोटता रहा है।

नित की तरह उस दिन भी कन्हाई सुबह ही गाय-भैंस लेकर जंगल निकल गया। दोपहर तक उसकी बाँसुरी की आवाज़ कानों तक पहुँचती रही। लेकिन दोपहर के बाद आवाज़ बंद हो गई। दीदी बेचैन हो उठीं। कई बार इधर-उधर झाँकीं, मन-ही-मन बुदबुदा उठीं - 'कन्हाई की बाँसुरी बंद क्यों हो गई? कहीं उसे नींद तो नहीं आ गई?' दीदी शंकित हो उठीं।

दीदी के मन के इन सवालों का उत्तर किसके पास था? किसे पता कि कन्हाई ने एकाएक बासुरी बजाना क्यों बंद कर दिया? दीदी उस दिन उदास-उदास-सी रहीं। उन्होंने भोजन भी अनमने ढंग से किया।

मौसी ने पूछा, 'का बात है बिटिया, इतना उदास क्यों हो?'

'कुछ नहीं मौसी, वैसे ही मन कुछ खिन्न है।' दीदी मौसी से मन की बात छुपा गईं। लेकिन भीतर की पी ा को नहीं दबा सकीं। उनके चेहरे पर वह पी ा साफ झलक रही थी। मौसी ने उसे पढ़ा और पढ़ कर चुप रह गई। चुप रहने और भीतर-भीतर घुटने के सिवा वह कर भी क्या सकती थी। वह तो सिर्फ़ एक रसोइया थी। उसका अधिकार रसोई-घर और दीदी की देख-रेख तक ही सीमित था। चाह कर भी माँ का दर्जा नहीं ले सकती थी।

दीदी की माँ, जो दीदी के पैदा होते ही लकवा और बीमारी का शिकार हो गई थीं उनके लिए उसी वक्त दीदी मर चुकी थीं। छुटपन से दीदी माँ के प्यार और स्नेह से वंचित रहीं। मौसी ही दीदी के लिए सब कुछ थीं। सब कुछ होते हुए भी मौसी दीदी की माँ नहीं हो सकती थीं। माँ की तरह वो दुख-दर्द नहीं बाँट सकती थीं। और जो दीदी की माँ थीं, वो माँ कहलाना नहीं चाहती थीं। फिर दीदी के मन की बातें कौन सुने, उनका दुख-दर्द कौन बाँटे?

समय से शाम को गाय-भैंसे जंगल से लौट आईं। लेकिन कन्हाई नहीं लौटा। उसकी बाँसुरी की आवाज़ नहीं लौटी। उसके पैरों की आहट नहीं लौटी, जिसे चुपके से दीदी कान लगा कर सुनती थीं।

'कन्हाई को जंगली जानवर उठा कर ले गये' यह खबर फैलते ही दीदी का कलेजा धक्क से करके रह गया। दीदी बेहोश हो गईं। उनकी बेहोशी का पता मौसी के सिवा किसी को नहीं चल पाया। जब उनको होश आया तो दीदी मौसी की गोद में थीं। आँसू भरी आँखों से मौसी को एक बार देखा और पूछ बैठी, 'वह कौन-सा जानवर था मौसी जो मेरे कन्हाई को उठा कर ले गया? उसका रंग-रूप कैसा था? इतने दिनों तक वह कहाँ छुपा था? किसी गाय-भैंस को उठा कर क्यों नहीं ले गया? वह क्या सिर्फ़ मेरे कन्हाई के लिए ही आया था?'

दीदी के इन सवालों का उत्तर मौसी कहाँ से देती। वह चुप रही और दीदी को सँभालती रही। मेरे मन में आया कि मैं कह दूँ वह जानवर कोई और नहीं भुआली है और उसे ललकारने वाले ब े बाबू हैं। लेकिन पता नहीं मेरी ज़ुबान क्यों नहीं खुल पाई। शायद, ब े बाबू का भय उस वक्त मेरे सामने भूत बन कर ख ा था।

दीदी उठीं, मौसी से अलग हुईं और अपने कमरे में चली गईं। थो ी देर बाद जब कमरे से बाहर आईं तो उन्हें देख कर मौसी दंग रह गई। दीदी के शरीर पर सफेद वस्त्र थे और हाथ की चू याँ गायब थीं। मौसी की आँखों से आँसू टपक प े। वो मन-ही-मन बुदबुदाईं, 'कमला बिटिया विधवा हो गई' और सिसकने लगी।

सुबह दीदी ने मुझसे कहा, 'बसंत, तू जंगल जा और कन्हाई की बाँसुरी ढूँढ ला।'

मैं डरते-डरते जंगल गया और उस मोटे दरख्त के पास ख ा हो गया, जहाँ बैठकर कन्हाई रोज बाँसुरी बजाया करता था। इधर-उधर नज़र घुमाई तो कन्हाई की बाँसुरी एक गड्ढे में प ी दिखी।

मैंने उसे उठाया और यह देख कर चकित रह गया कि पैरों से मसल कर उसे गड्ढे में फेंक दिया गया था। बाँसुरी लाकर दीदी के हाथ में दे दी। दीदी ने उसे आँख और छाती से लगाया और अपने सोने के कमरे में रख दी।

दीदी का विधवा रूप मौसी ब` बाबू से महीनों छुपाती रहीं। ब` बाबू आँगन मे जब भी आते, दीदी के कमरे का किवा  मौसी ओठंगा देतीं। लेकिन एक दिन अचानक दीदी का विधवा रूप ब` बाबू ने देख लिया। आँखें लाल कर मौसी से पूछ बैठे, 'ये क्या दाई, कमला सफेद कप ा पहनी है? उसके रंगीन कप` क्या हो गये?'

मौसी चुप। जिस तरह कमला दीदी के सवालों का उत्तर नहीं दे पाई थीं, उसी तरह वो ब` बाबू के सवालों का उत्तर भी नहीं दे पाई। ब` बाबू कुछ देर तक आँगन में ख` रहे, मौसी को जलती आँखों से घूरते रहे, फिर दालान पर लौट गये। कमला दीदी से कुछ पूछने की उनकी हिम्मत नहीं हुई।

उसी रात ब` बाबू कमला दीदी को लेकर अपने दोनों बेटों के पास मुंबई आ गये। कमला दीदी अपने साथ मुझे भी लेती आईं।

ब` बाबू लौट गये, लेकिन दीदी नहीं लौट सकीं। महीने भर बाद खबर आई कि मौसी का देहान्त हो गया। दीदी खूब रोईं और मौसी के नाम पर दो दिन उपवास रखा। मौसी की मौत किन परिस्थितियों में हुई किसी को नहीं पता चल सका। कन्हाई की मौत की तरह मौसी की मौत भी एक रहस्य बन कर रह गई।

दीदी एक दिन अनमनी थीं। सुबह से ही अपने कमरे में गुमसुम बैठी थीं। उनके सामने भोजन की थाली रखी तो हाँ, हूँ कुछ भी नहीं बोलीं। थाली को एक तरफ सरका दिया।

'दीदी तबियत तो ठीक है न?' मैंने पूछा तो कोई उत्तर नहीं दिया। चुपचाप मेरी तरफ देखने लगीं। उनकी आँखों में मुझे एक अजीब तरह का खालीपन महसूस हुआ। चेहरे पर उदासी की लकीर भी दिखी। दुबारा कोई प्रश्न पूछने की मेरी हिम्मत नहीं हुई। मैं अपने कमरे में लौट आया। सोचा, दीदी को कन्हाई याद आ रहा होगा।

थो ी देर बाद धीरे-धीरे बाँसुरी की आवाज़ दीदी के कमरे से आने लगी। मैं चौंका। यह आवाज़ ठीक कन्हाई की बाँसुरी की आवाज़ की तरह थी। आवाज़ धीरे-धीरे तेज होती गई और इतनी तेज हो गई कि पूरा घर, पूरा मोहल्ला बाँसुरी की आवाज़ से गूँज उठा।

मैं दौ  कर दीदी के कमरे में गया। देखा, कन्हाई की बाँसुरी दीदी के होठों से लगी है और दीदी बाँसुरी बजाने में तल्लीन हैं। दीदी को यह भी पता नहीं चल सका कि उनके कमरे में घर और मोहल्ले के कितने लोग आकर जमा हो गये हैं।

मुझे लगा कि फिर से कन्हाई जीवित हो गया है। और इस वक्त वह दीदी के कमरे में मौज़ूद है। उसकी आकृति कमरे की दीवार पर धीरे-धीरे उभर रही है।

# प्रेम-कथा

**प्रो. प्रेम मोहन लखोटिया**

तेरे आँगन फिर फिर आना ही तो जीवन है।

तेरी प्रेरक याद बसा कर,
दूर क्षितिज तक चलते जाना ही तो जीवन है।

देह जले नेह में भीगी,
हर आँगन का तिमिर हटाना ही तो जीवन है।

बहुत कलुष है इस जग में,
आत्म-कलेवर साफ बचाना ही तो जीवन है।

मुमकिन नहीं रूठना तेरा,
पर विह्वलता से तुझे रिझाना ही तो जीवन है।

तुमने अगाध विश्वास दिया है,
आघातों के बीच निभाना ही तो जीवन है।

मैं चाहे जितना साधारण हूँ,
निज को तेरे योग्य बनाना ही तो जीवन है।

हृदय प्रणत और गीली पलकें,
तुझसे तब भी नयन मिलाना ही तो जीवन है।

यह प्रेम-कथा स्वप्निल सी दीखे,
पर उसमें जीना और जिलाना ही तो जीवन है।

# जापान और भारत को जो ने वाले दृढ़ सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक संबंध

**यासुकुनी एनोंकी**

छठी शताब्दी में बौद्धवाद के जापान आगमन के बाद से भारत और जापान को जो ने वाले अति सुदृढ़ सांस्कृतिक संबंधों को देख कर मैं पूर्णतः अभिभूत हूँ। मैं इस बात से पूरी तरह सहमत हूँ कि जापान और भारत दो ऐसे देश हैं जो एक-दूसरे के बहुत करीबी हैं। यहाँ तक कि हमारे इन दोनों देशों के प्रधानमंत्री वर्ष २००७ को 'भारत में जापन वर्ष' और 'जापान मे भारत वर्ष' के रूप में मनाने के लिए सहमत हो गये हैं। इन सभी कार्यक्रमों का उद्देश्य 'हमारे दृढ़ ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संबंधों की पुनः खोज करना और भविष्य में इसको सुदृढ़ बनाना है।'

मैं किचीजो-जी नाम से जाने जाने वाले टोकियो के एक उप नगरीय क्षेत्र का निवासी हूँ। मैं किचीजो या किस्सो के बारे में अस्पष्ट तौर पर यही जानता था कि यह बौद्ध धर्मियों का बोधिसत्व था, परन्तु भारत में जापान के राजदूत की हैसियत से आने के बाद ही मुझे पता चला कि किचीजो का उद्भव हिन्दू देवी लक्ष्मी से हुआ है। पुरातन काल में बौद्ध मत के साथ-साथ लक्ष्मी जी का भी चीन में प्रचार हुआ था और बाद में पता चला कि लक्ष्मी ही चीनी अवतार किचीजो थीं और बाद में जापान तक पहुँचने पर बौद्धों की देवी बन गईं। तद्नुसार, अगर मैं कहूँ कि जापानी लक्ष्मी के नगर से आया हूँ तो बेहतर होगा।

जापान और भारत, दो देशों के बीच के अन्तर्संबंध और दोस्ती के लम्बे इतिहास के साझेदार हैं। उदाहरण के तौर पर बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में रवीन्द्र नाथ टैगोर के जापानी दार्शनिक और कलाकार तेनशिन ओकाकुपा से नज़दीकी संबंध थे। इसी प्रकार से, द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान सुभाष चन्द्र बोस और जापानी लोगों के बीच की दोस्ती के भी लिखित प्रमाण मिलते हैं। फिर भी, बहुत कम भारतीय यह जानते हैं कि एक भारतीय बौद्ध भिक्षु ८वीं शताब्दी में ही जापान पहुँच चुका था और तब से १२ सौ वर्षों से इन दो देशों के बीच सुदृढ़ सांस्कृतिक संबंध चले आ रहे हैं।

भारत ने तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से ७वीं शताब्दी ईसवी सन् तक बंगाल की खा ी और दक्षिण पूर्वी एशियाई महासागर में समुद्री यातायात में अपना आधिपत्य बनाये रखा, इससे सागर का यह भाग 'बौद्धवाद की झील' में परिवर्तित हो गया। इस कारण से ब ी संख्या में भारतीय दक्षिण पूर्व एशिया में पहुँच गये और वहीं पर बस गये। ऐसा मानने पर यह भी तर्कसंगत प्रतीत होता है कि कुछ भारतीय समुद्री रास्ते द्वारा दक्षिण पूर्व एशिया के कुछ आगे उत्तर की ओर जापान भी पहुँच गये होंगे। महान भारतीय संत 'होहडोह' को इसके उदाहरण के रूप में गिन सकते हैं। उनके बारे में कहा जाता है कि वे ६४६ ईसवी सन् में जापान आये थे और बंशु (हयोगो प्रान्त) में गियोन मठ की स्थापना की। प्रामाणिक ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार सबसे पहले जापान पहुँचने वाला भारतीय बोधीसेना नामक 'बाह्मण बौद्ध प्रमुख पुजारी' था। उन्होंने ७५२ ईसवी सन् में नारा के टोडा जी मंदिर में महान बुद्ध के प्रतिष्ठापन समारोह के प्रमुख संचालक की भूमिका अदा की। लिखित प्रमाणों के अनुसार उनका जन्म ७०४ ईसवी सन् में दक्षिण भारत में हुआ था और सम्राट शोमू ने चीन के गोडेसेन मंदिर में अपने प्रवास के दौरान उन्हें जापान यात्रा करने का निमंत्रण दिया था। वे ७३६ ईसवी में केवल ३२ वर्ष की आयु में क्यूशू में डाजेपू बंदरगाह, जापान में पहुँचे थे। वे और उनके वियतनामी अनुयायी 'बतेत्सू' भारतीय संस्कृति जैसे संस्कृत, संगीत और नृत्य के साथ-साथ बौद्ध धर्म के प्रचार में लगे हुए थे।

जापान में अपनी सराहनीय उपलब्धियों के लिए उन्हें सम्राट शोमू ने, प्रमुख पुजारियों ग्योकी और रोबेन के साथ-साथ टोडा जी मंदिर के चार में से एक संत के रूप में सम्मान दिया था। लगभग १२ सदियाँ बीत जाने के बाद जापान के बौद्ध धर्म के अनुयायियों ने बोधीसेना का स्मारक और उनकी प्रतिमा लगाने के लिए निरन्तर धार्मिक आंदोलन चलाया था। इस प्रयोजन में टोडा जी ने पूरा सहयोग दिया। अन्ततः वर्ष २००२ में महान बुद्ध प्रतिष्ठापना की १२५०वीं सालगिरह के अवसर पर बोधीसेना की प्रतिमा की स्थापना की गई। टोडाजी में महान बुद्ध की प्रतिष्ठापना के हर ५०वें वर्ष में स्मरणोत्सव मनाने की परम्परा रही है। श्रीमती माइचियों उहारा, बोधीसेना की मूर्तिकार और लेखिका ने अपनी

पाण्डुलिपि में लिखा है कि 'उन्होंने बोधीसेना की मूर्ति को ऐसे व्यक्ति की छवि को ज़ेहन में रख कर बनाया है जो सम्राट शोमू को सहयोग देते समय न केवल विनम्र और शांत रहता है, अपितु वह महात्मा बुद्ध की सफलतापूर्वक प्रतिष्ठापना के लिए पूर्ण आत्मविश्वास, दृढ़-संकल्प रखने वाला है। साथ ही ऐसा व्यक्ति जो समाज के सभी अंगों के विचारों को आत्मसात किये हुए है। मुझे भी हॉल में लगी उनकी प्रतिमा को पास से देखने का अवसर प्राप्त हुआ था। बोधीसेना की प्रतिमा की आँखें हरे रंग की थीं और चेहरा बहुत आकर्षक था। ७६० ईसवी सन् में बोधीसेना ५६वर्ष की आयु में चल बसे। नारा में बनी रयोसेनजी मंदिर में बनी प्रस्तर मीनार को उनकी कब्र माना जाता है।

अभिलिखित इतिहास के अनुसार टोडाजी मठ में महान बुद्ध के महाभिषेक समारोह में प्रचीन नृत्यों 'बुगाकु' और 'गिगाकु' का प्रदर्शन किया जाता था। बुगाकु को सिल्क रो की विविध कलाओं का मिश्रित रूप माना जाता है इसमें नृत्य और संगीत दोनों ही शामिल होते हैं। बुगाकु पर भारत की संस्कृति का प्रभाव आसानी से देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए, बुगाकु की पसंदीदा कहानियों में एक है 'बाली नृत्य' जो रामायण की किष्किन्धा वन में बाली और सुग्रीव के बीच की ल ाई की प्रसिद्ध कहानी को ही पुनः प्रस्तुत करती है।

जापानी राजशाही विश्व में प्रचालित सबसे वंशानुगत राजशाही शासन व्यवस्था है। पिछली १४ सदियों से अधिक समय से एक ही वंश की पीढ़ी दूसरी की निरन्तर उत्तराधिकारी बनती जा रही है। शाही महल आज भी प्राचीन संस्कृति और परम्परा को बचाने के कार्य में लगा हुआ है। बुगाकु अथवा उसका रूपान्तरण गिगाकु इसका विशिष्ट उदाहरण है। शाही महल में आज भी एक गिगाकु विभाग है जो गिगाकु का अभिनय अपने राजकीय कार्यक्रमों में करता है। आज भी भारतीय पौराणिक कहानियों को शाही महल में गिगाकु अभिनय के रूप में अभीनीत होते देखना काफी रुचिकर लगता है जिसका प्रादुर्भाव मूलतः १२वीं सदी से भी पहले जापान ही में हुआ था। इसका अभिनय महान बुद्ध महाभिषेक समारोह के दौरान भी किया जाता है।

गिगाकु मुखौटे लगाकर किये जाने वाला हास्य प्रधान नृत्य है जिसे उस समय के नारा मंदिरों तथा टोडाजी मंदिर का सबसे प्रसिद्ध नृत्य माना जाता था। कामाकुरा काल के बाद (१२-१४ शताब्दी) गिगाकु में शनैः-शनैः गिरावट आती गई परन्तु वह आज भी शिशि माई (शेर का नृत्य जिसका अभिनय नये वर्ष दिवस पर किया जाता है) के रूप में जीवित है। १९८० में टोडाजी मंदिर के व्यापक पुनरुद्धार के अवसर पर स्वयंसेवकों द्वारा इसका प्रदर्शन किया गया तथा २००२ में तेनरी विश्वविद्यालय के गिगाकु क्लब द्वारा महान बुद्ध महाभिषेक की १२५०वीं सालगिरह के अवसर पर इस अभिनय का प्रदर्शन किया गया। टोडाजी संग्रहालय के प्रचीन गिगाकु मुखौटे में ब्राह्मण और गरु के मुखौटे भी हैं। इनमें भी हम भारतीय प्रभाव को पूरी तरह देख सकते हैं।

नृत्य के साथ-साथ भारतीय वाद्य यंत्र भी जापान में लाये गये। विशिष्ट उदाहरण है। 'बीवा' जिसका उद्‌भव भारतीय 'वीणा' से हुआ है, जो सरस्वती देवी का पसंदीदा वाद्य यंत्र है। जापान की सबसे ब ी झील का नाम भी बीवा के आकार के काफी समीप होने के कारण बीवा झील रखा गया। अतः भारतीय वीणा से प्रभावित होकर ही जापान की सबसे ब ी झील का नाम रखा गया है।

नृत्य और संगीत के अलावा कई भारतीय पौराणिक कथाओं को काबुकी या नोह थिएटर (नाट्यशाला) की विषय-वस्तु में रूपांतरित किया गया था। उदाहरण के लिए, काबुकी का 'नारुकामी' और नोह का 'इक्काकु सेनिन' का उद्‌भव महाभारत की कहानियों से हुआ है अतः हम कह सकते हैं कि जापानियों ने कई भारतीय पौराणिक कथाओं के भारतीय मूल को अनजाने में ही अपना लिया था और अब यह जापानी साहित्य का हिस्सा बन गये हैं।

**संस्कृत और जापानी वर्णमाला (काना)** : संस्कृत भाषा दो रूपों में जापान में पहुँची - इनमें से एक संस्कृत का अध्ययन था, साथ ही यह जापानी वर्णमाला की संरचना के लिए आधार तैयार करने का साधन बनी। ८वीं सदी के बाद से जापानी शिष्यों को बौद्धमत के विशेषज्ञ बनने की आवश्यकता के अलावा मूल भारतीय सूत्र और पाठ्यपुस्तकों से संस्कृत पढ़नी प ती थी। उदाहरण के तौर पर, संस्कृत में लिखी प्राज्ञा परामिद् सूत्र, होरयूजी मंदिर तक पहुँचा और अब देश के सबसे पुराने 'ता पत्र सूत्र' (ता पत्र पर संस्कृत में लिखे गये सूत्र) के रूप में अच्छी तरह जाने जाते हैं। मूलतः संस्कृत की कोई लिपि नहीं थी और यह मौखिक रूप से अभिव्यक्त की जाने वाली भाषा थी। ईसा पूर्व तीसरी सदी में संस्कृत ने ब्राह्मी लिपि को अपनाया और उसके बाद तीसरी शताब्दी ईसवी

सन् में सिद्धम लिपि का प्रयोग किया जाने लगा। १०वीं शताब्दी के बाद, आज की देवनागरी लिपि को संस्कृत के लिए विकसित किया गया। इस तरह जापानियों ने जब ८वीं से ९वीं शताब्दी तक जिस संस्कृत का अध्ययन किया वह सिद्धम की पर्याय ही थी।

इसलिए बुतेत्सु ने महान बौद्ध महाभिषेक समारोह के अवसर पर सिद्धम अध्ययन पर वक्तव्य दिया। जापानी प्रमुख पुजारी, कुकाई तेंग चीन से सिद्धम अध्ययन की पाठ्यपुस्तकें अपने साथ वापिस जापान लाया। ये पाठ्यपुस्तकें और बेतेत्सु के वक्तव्य संबंधी टिप्पणियाँ १९वीं सदी तक जापान में सिद्धम के अध्ययन के लिए प्रमुख साधन बने रहे। वर्तमान समय में, कुछ अपवादों को छो  कर सिद्धम अध्ययन लगभग समाप्त हो गया है और सिद्धम लिपि अब मूलतः कब्रों पर लक ी के स्तूपों पर लिखने के लिए ही प्रयोग की जाती है। यहाँ यह एक रोचक तथ्य है कि जापान में १० शताब्दियों से अधिक समय तक सिद्धम अध्ययन होता रहा जबकि यह भारत से लगभग समाप्त हो चुका था।

जब संस्कृत चीन में आई तब चीनी लोग संस्कृत का वर्णन चीनी अक्षरों के माध्यम से और समान उच्चारण से किया करते थे। परिणामस्वरूप जापानियों ने भी संस्कृत को सरलीकृत चीनी अक्षरों के माध्यम से जल्दी सीख लिया, जो आगे चल कर जापानी वर्णमाला 'काना' के रूप में विकसित हो गई। इसी कारण, संस्कृत के शब्द और जापानी काना के शब्दों का ढाँचा काफी हद तक एक जैसा है। विशेषकर हमारी दोनों भाषाओं के स्वरों के शब्दों का ढाँचा काफी समान है। चूँकि चीन ने सर्वप्रथम संस्कृत लिखना शुरू किया था, इसलिए अब भी वे उसे बिना वर्णों अथवा ध्वन्यात्मक प्रतीकों से ही लिख रहे हैं। जबकि दूसरी ओर, चाहे जापान ने संस्कृत चीनी अक्षरों से अप्रत्यक्ष तौर पर सीखी थी, फिर भी उन्होंने संस्कृत के आकार और ध्वनि को लेकर अपनी वर्णमाला का निर्माण कर लिया। यही कारण है कि भारतीय लोग इतनी जल्दी जापानी भाषा को सीखने में सक्षम हैं और ऐसे ही जापानी लोग भारतीय भाषा को सीखने में।

**गियोन उत्सव और भारत** : टोकियो के कान्दा तथा ओसाका के तेनजिन उत्सवों की भाँति क्योटो का गियोन उत्सव जापान के तीन प्रमुख उत्सवों में से एक है। हर साल जुलाई में गियोन उत्सव के लिए लाखों लोग जापान के हर हिस्से से क्योटो पहुँचते हैं। दरअसल, गियोन उत्सव जापानियों के ग्रीष्मकालीन उत्सवों का हिस्सा है। परंतु कोई जापानी इस तथ्य से परिचित नहीं है कि मूलतः इस उत्सव की शुरुआत हिन्दू देवी-देवताओं की पूजा से हुई थी, ताकि पूजा-प्रार्थना से महामारियों को भगाया जा सके। गियोन भारतीय जेतावन बौद्ध मठ का चीनी नाम है, जो प्राचीन खोसला राज्य में श्रावस्ती के अंचल मे बसा हुआ था। यह भाग वर्तमान उत्तर प्रदेश राज्य में स्थित है। एक बहुत ही प्रसिद्ध जनश्रुति है कि सुदत्त नाम के एक अमीर व्यापारी ने कुछ भूमि खरीदी। उसका मूल्य इतना था जितना कि उस पर फैलाये जा सकने वाले सोने के सिक्कों का होता था और उस पर बौद्ध शाक्य मुनि को उपदेश देने के लिए बुलाने हेतु एक मठ का निर्माण किया। जेतावन मठ के ईष्ट देव गोशीर्ष हैं जिनके पास महामारी को भगाने की पवित्र शक्ति है। ऐसा माना जाता है कि गोशीर्ष देवता मूलतः भारत के पूर्वी घाटों के दक्षिणी छोर के मूलय पर्वत के देवता हैं।

प्राचीन समय में पौराणिक गोशीर्ष जापान में बौद्ध धर्म के साथ-साथ ही आया। जब क्योटो में महामारियाँ फैलने लगीं तो वहाँ के लोगों ने गियोन के संरक्षक देवता गोशीर्ष से महामारियों को खत्म करने के लिए प्रार्थना की। आप सोच भी नहीं सकते कि पिछली १० शताब्दियों से हर साल क्योटो के लोग इस उत्सव को हिन्दू देवता गोशीर्ष की पूजा करके स्वयं को महामारियों से बचाने की प्रार्थनाओं के साथ मनाते आ रहे हैं। भारत के साथ हमारा निकट संबंध यहीं समाप्त नहीं होता। गियोन उत्सव की प्रमुख विशेषता क्योटी मार्ग से निकलने वाले ३१ विशालकाय रथों (पहियों पर टिके हुए) की शोभा यात्रा है। निःसंदेह इस विशाल रथ परेड का स्त्रोत १० ब े रथों के साथ निकाली जाने वाली हिन्दू रथ यात्रा है। जुलाई में क्योटो जाने पर आप देखेंगे कि गियोन यात्रा पुरी (उ ीसा) में जगन्नाथ मंदिर की रथ यात्रा का ही दूसरा रूप है।

**भारतीय वस्त्र और गियोन उत्सव** : क्या आप जानते हैं १७वीं सदी में भारतीय सूती वस्त्र का एक टुक ा जापान में लाया गया था जिसे आज तक सँभाल कर रखा गया है और गियोन यात्रा रथ के लिए अलंकृत परदे के तौर पर साल में एक बार प्रयोग किया जाता है। यह वस्त्र १७वीं शताब्दी में क्योटो के एक रईस व्यापारी, शाउबेई फुकुरोया द्वारा दान में दिया गया था। इसे भण्डार से बाहर निकालने के लिए बोर्ड के सदस्यों की अनुमति लेना आवश्यक होता है। यह कप ा ३.४मीटर लम्बा

है और उस पर देवदार के पे  तथा सारस चित्रित हैं जिन्हें जापान में दीर्घ आयु का प्रतीक माना जाता है। गियोन यात्रा के दौरान रथ पर इसे टाँगने से इस कप ् का काफी हिस्सा बैरंग हो गया है। परंतु जो हिस्सा सूर्य की रोशनी से बचा रहता है उस पर आज भी हम उसके मूल रंगों को देख सकते हैं, जो हमें उसकी उत्कृष्ट कला की याद दिला देता है।

मुझे दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में लगी तापी संग्रह प्रदर्शनी देखने का अवसर मिला जिसमें १३वीं से १९वीं सदी के मध्य देश के सभी हिस्सों में निर्यात किये गये पुरातन भारतीय वस्त्रों के निजी संग्रहण को रखा गया था। जैसा वस्त्र मैंने क्योटो के गियोन उत्सव में देखा था वैसा ही समान रूपाकार का वस्त्र इस प्रदर्शनी में देख कर मुझे बेहद आश्चर्य हुआ। यह 'पलमपोष' (बिछौना) कोरोमण्डल घाट में बनाई गई थी और १८वीं सदी में डच के बाजार में निर्यात की गई थी। इस संग्रह के मालिक श्री प्रफुल शाह ने बताया ये वे उत्पाद हैं जिन्हें डच व्यापारियों ने भारतीय वस्त्र उद्योग को जापानी रूपरेखा के अनुरूप बनाने की फरमाइश की थी।

आज भारत को सूचना प्रौद्योगिकी सॉफ्टवेयर शक्ति के रूप में जाना जाता है, परंतु अभी भी वह उत्पादन शक्ति में पीछे रह गया है। फिर भी मुझे विश्वास है कि भारत के पुनरुद्धार में वह फिर से उत्पादन में महाशक्ति बन कर उभरेगा जैसे कि वह एक समय में देश के सभी वस्त्रोद्योगों पर अपने सूती वस्त्रों की सर्वोत्कृष्ट गुणवत्ता के कारण राज करता था। ऐसा लगता है कि भारत में औपनिवेशिक शासन के दो शताब्दियों के नुकसान के कारण उत्पादन में देशों की प्रतिस्पर्धा में पीछे रह गया। मुझे विश्वास है कि अपनी आर्थिक उदारवादी नीति के अन्तर्गत भारत फिर से अपनी वही प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेगा और जल्द ही उत्पादन के क्षेत्र में महान शक्ति बन जायेगा।

भारतीय सूती वस्त्रों में उच्च गुणवत्ता के कप ्, कलात्मक रूपाकार तथा देश की सबसे बढ़िया रंगने की तकनीक का एकीकृत रूप देखने को मिलता है। भारत ने विश्व के बाजारों में किसी से कम न होने का आधिपत्य स्थापित किया था। विशेषकर १७वीं और १८वीं शताब्दी में यूरोप में, भारतीय सूती वस्त्रों ने यूरोपीय समाज में जबरदस्त धूम मचाई और जो यूरोपीय कप ् केवल चम ् और ऊन पर ही निर्भर थे उसे पूरी तरह बदल दिया। जापान को भी १७वीं और १८वीं शताब्दी में डच व्यापारियों के भारतीय वस्त्र आयात का लाभ मिला। गियोन उत्सव में दान के अलावा कई भारतीय कप ् तोकुगावा शोगुनेट तथा कई अन्य शाही परिवारों के पास भी थे। इन वस्त्रों को आज भी पारिवारिक धरोहर के रूप में सँजोकर रखा है। अलग-अलग कप ों पर सूती या रेशमी, दोनों पर भारत की रंगाई तकनीक ने जापानी रंगाई को अत्याधिक प्रभावित किया जिसका एक उदाहरण यूज़ेन-ज़ोम है।

**हिन्दू भगवान और जापान** : जिस तरह मैं जापानी लक्ष्मी नगर से आया हूँ उसी तरह जापानियों की ज़िन्दगी चारों तरफ से कई भारतीय भगवानों से घिरा देख कर बहुत आश्चर्य होता है जैसे तेशाकू-तेन, जो इन्द्र का ही रूप हैं और बेन-तेन जो अध्ययन एवं कला की देवी सरस्वती हैं।

चूँकि क्योटो और नारा के मंदिर हिन्दू भगवानों से भरे प ् हैं; फिर भी मैं आपको क्योटो के संजु-सांगेन-दो मठों में जाने का परामर्श देना चाहूँगा। यह मठ हाल में स्थापित १००१ इकाइयों वाले सहस्त्रभुजा बोधिसत्व (हजार हाथों सहित) के लिए प्रसिद्ध है। आप वहाँ देखेंगे कि सभी २८ संरक्षक भगवान हिन्दू देवी-देवता ही हैं जैसे इन्द्र, ब्रह्मा, सरस्वती, लक्ष्मी, शिव तथा कई और। सभी भगवानों के साथ अँग्रेजी विवरण भी लगा हुआ है ताकि दर्शक मूल हिन्दी नामों के साथ जापानी या चीनी नामों की तुलना कर सकें।

जापानी अक्सर इस वाक्य का प्रयोग किया करते हैं, तीन देशों में सर्वश्रेष्ठ होने की ओर संकेत करता है क्योंकि पुराने युग में देश को जापान, चीन और भारत का पर्याय ही माना जाता था।

२१वीं सदी का एशिया अब जापान के अलावा चीन और भारत के मधुर संबंधों के साथ फिर से 'नए तीन देशों के युग' के प ाव की देहलीज़ पर है। हम आसानी से कह सकते हैं कि एशिया की दृढ़ता और समृद्धि काफी हद तक इस क्षेत्र की तीन महान शक्तियों के सौहार्द्रपूर्ण संबंधों पर निर्भर करती है।

जापान और भारत राजनीतिक स्तर पर आदान-प्रदान के माध्यम से अपनी अनुकूल भागीदारी तथा कई क्षेत्रों में परस्पर सहयोग को निरन्तर मजबूत कर रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों में जापान में बढ़ते 'भारतीय प्रभाव' के साथ-साथ हमारे दोनों देशों के बीच के आर्थिक संबंध भी बहुत तीव्र गति से विकास होने की गवाही देते हैं, अगर इन दोनों देशों के संबंध केवल राजनीतिक और आर्थिक आधार

पर टिके होते तो हो सकता है, ये संबंध कमज़ोर और ज्यादा समय तक न टिकते। जबकि दो देशों के बीच की दोस्ती लम्बे समय तक बनाये रखने के लिए संबंधों का दीर्घकालीन ढाँचा बनाया जाना चाहिये। मेरा मानना है कि दीर्घकालीन मधुर संबंधों को सहेजने के लिए दृढ़ सांस्कृतिक और लोगों का परस्पर संबंध बहुत महत्वपूर्ण तत्व होना चाहिये। इन दोनों देशों के बीच उत्कृष्ट संबंध प्रगाढ़ करने के लिए मिले इस स्वर्ण अवसर का लाभ उठाते हुए, हमें अब जापान और भारत को जो ने वाले सांस्कृतिक संबंधों के दृढ़ और दीर्घ इतिहास को फिर से नई पहचान देने के और उसी आधार-भूमि पर नव-निर्माण के प्रयास करने होंगे।

## सुनो

**पाराशर गौ**

सुनो....
मेरी आवाज़ को ध्यान से सुनो
अगर पौध मर गया
तो....
उसके साथ-साथ
बीज भी मर जायेगा
धरती बंजर हो जायेगी
तब....
किसान भी मर जायेगा।
अगर वो मर गया
तो....
उसके साथ समूचा राष्ट्र भी मर जायेगा
फिर....
न तो कोई सुनने वाला होगा
ना सुनाने वाला।
सुनो....
मेरी बात को ध्यान से सुनो।

# वापसी

गुणानंद थपलियाल

अचानक ड्राइवर ने बस रोक दी थी क्योंकि बीच स क में जंगली चीता गरजता हुआ ख ा हो गया था। वह बस को यूँ घूरने लगा था मानों अभी झपटा मार लेगा। बस में बैठे लोग खटाखट खि कियों के शीशे बंद करने लगे थे, तभी पीछे की खि की पर बैठे रिटायर्ड कर्नल ने अपनी लाइसेंसी बंदूक से खि की से हवा में फायर दाग दिया था। तब चीता उस पहा ी की ओर ढलान पर फैले घनघोर जंगल की ओर सरक गया था।

बस फिर चल प ी थी ऊँचाई की ओर १५ कि.मी. प्रति घंटे की रफ्तार से।

मैं खि की पर बैठा आसमान से बात करती हुई पर्वत-मालाओं को निहारता जा रहा था। दूर-दूर तक फैले बाँझ, बुराँस, काफल, ची  और देवदार के वृक्षों से लदी सजी पर्वत-मालायें आँखों को तृप्त और मन को मुग्ध किये जा रही थीं। शीतल मंद सुगंधित पवन तन-मन को तरो-ताज़ा कर रही थी। नदी के उस पार सीढ़ीनुमा खेतों के माथों पर विराजमान हरे-भरे वृक्षों के झुरमुटों के बीच में जगमगाते हुए पहा ी गाँव अपनी अलग ही छटा बिखेर रहे थे और इधर मैं बचपन की याद में खो गया था। मुझे अपनी माँ की बहुत याद आने लगी थी। पिताजी को गुजरे एक ज़माना हो गया था, यादें धूमिल हो गयीं, किंतु माँ की मृत्यु तो सुना है अभी कुछ ही वर्ष पहले हुई है। कितनी ममतामयी थी मेरी माँ ! हर दिन, हर पल मेरी प्रतीक्षा, मेरी चिंता और मेरे लिए मनौतियाँ ही मनाती रहती थी। मेरे कोई अपने भाई-बहन नहीं थे। उसके लिए मैं ही सब कुछ था। एक मैं था कि . . . सहसा मुझे रोना आ गया था। बस के यात्री मुझे देख न सकें, मैंने अपना सर व मुँह बस की अगली सीट के डंडे पर नीचे की ओर झुका दिया था। मैं इतना भाग्यहीन रहा कि माँ की मृत्यु पर क्रियाकर्म के लिए भी मैं यहाँ न आ सका था। आज मेरी माँ होती तो मुझे गले लगाती हुई अपनी आँखों में समाये आँसुओं की झ ियों से मुझे नहला देती और रो-रोकर कहती, 'कितना निर्दयी हो गया तू? अब आ रहा है। कितना कठोर दिल है तेरा।'

मेरी अपनी मज़बूरी थी। मुझे आजीविका के लिए कहाँ-कहाँ नहीं भटकना प ा - दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, मद्रास ही नहीं, मैं भारत के अन्य शहरों के अलावा दुबई की यात्रा भी कर आया था, पर कहीं भी मुझे जमकर काम नहीं मिल पाया। केवल उदर-पोषण के अतिरिक्त मैं कुछ भी तो नहीं कर पाया। मैं अपने पाँवों पर ख ा होकर एक सभ्य, सुसंस्कृत, ईमानदार आदमी बन सकूँ, अपनी माता और मातृभूमि पर जान निछावर कर सकूँ, मेरी प्रबल इच्छा बचपन से और आज तक है- परंतु हाय रे भाग्य ! वह आज तक पूरी नहीं हुई।

भाग्य मुझे कहाँ से कहाँ ले गया। अब मेरे दो बच्चे हैं, पत्नी है, पर मेरा अपना घर नहीं है। पत्नी के घर में शहर की एक पुनर्वास कॉलोनी में रहता हूँ। जिस फैक्टरी में काम करता था उसी फैक्टरी के फोरमैन ने मुझे मेहनती और ईमानदार आदमी समझकर घर-जमाई बना लिया था। उन्हीं की ओर से बहुत दिन से यह प्रश्न बार-बार किया जा रहा था कि मैं गाँव में अपने हिस्से की ज़मीन आदि बेचकर कुछ पैसे क्यों नहीं ला रहा हूँ? मैं उन्हीं के कहने से बीस साल के बाद अपने हिस्से की ज़मीन व मकान बेचने जा रहा था।

उस पुनर्वास कॉलोनी में जहाँ मेरी गृहस्थी चल रही थी, एक नहीं हजार मुसीबतें थीं। बिजली का संकट, पानी का संकट और दूषित वातावरण में लोग जी रहे थे की े-मकौ ों की तरह। मेरी पत्नी और मेरे ससुराल वालों ने मेरे हित के लिए ही वहाँ पर कुछ पुनर्निमाण का कार्य शुरू कर दिया था। उसके लिए रुपयों की बहुत जरूरत थी। फैक्टरी से मिलने वाली मेरी थो ी-सी तनख्वाह अन्न, जल, दूध, साग-सब्जी के लिए ही पर्याप्त नहीं थी। ससुर जी काम छो कर घर पर बीमार बैठ गये थे। उन्होंने इस काम में बहुत पैसा लगा दिया था और अभी भी बहुत चाहिये था। यह पैसा आयेगा कहाँ से? यह काम मेरे और मेरे बच्चों के भविष्य के लिए हो रहा था। गाँव की ज़मीन-जायदाद एवं हिस्सेदारी का सूत्र मैंने ही उन्हें दिया था। अतः मुझे ही गाँव से पैसे वसूलने का ठेका दिया गया था

ताकि शुरू किया गया निर्माण कार्य भलीभाँति संपन्न हो सके। मैं इसी लक्ष्य को लेकर अपने पहा ी गाँव को कूच कर गया था।

मैं बचपन की यादों में फिर खो गया। मेरी माँ पनधारे से नहीं लौटी। मैं रो रहा हूँ। कोई मुझे ढाँढस दे रहा है, पनधारा बहुत दूर है बेटे, आ रही होगी। घर के अँधेरे में कौन छिपा बैठा है? मुझे बाहर ले चलो। मेरी माँ कह रही है बाहर भी अँधेरा है बेटा, सुबह होगी तब बाहर जायेंगे। हमारे घर का मेहमान थक गया है, उसके पाँव सूज गये हैं। नमक पानी का सेंक किया जा रहा है। गाँव की बेटी-बहुएँ नमक की डली के साथ मंडुवे की रोटियाँ चबा रही हैं। बच्चे भाँति-भाँति के चीथ` पहन कर एक दूर की स्कूल में झुरमुट बना कर बस्ता-पाटी लिए जा रहे हैं। घाटियों को रुलाती हुई एक नन्हीं-सी बिटिया ससुराल को जा रही है। पूरा गाँव उसकी विदाई के लिए पहा  के उस ओर तक चलता ही जा रहा है। तभी, बस का कंडक्टर क कता हुआ बोला, 'लालढुँगी वाले उतर जाओ। लालढुँगी आ गया है। उतरो, उतरो, उतर जाओ। लालढुँगी आ गया।' मैं जोर से चिल्ला प ा, 'अरे, लालढुँगी तो मेरे गाँव का नाम है भया ! मुझे तो लालचोंरी में उतर करके १२मील पैदल चलना था, तब यहाँ पहुँचना था।'

'अरे साहब ! कहाँ रहे आज तक आप? शायद कई वर्षों में आप इधर आ रहे हैं। उतरो, जल्दी उतरो, यही है लालढुँगी।'

मैं अपनी अटैची और झोला उठा कर चुपचाप उतर गया। उतर के इधर-उधर देखता हूँ, मेरी आँखें चुँधिया जाती हैं। जहाँ कभी हम गुल्ली-डंडा खेलते थे, उस जगह एक अच्छी-खासी मार्किट बन चुकी थी। मैंने वहाँ से थो ी मिठाई खरीदी और सामने अपने पुश्तैनी मकान की ओर चल प ा। सामने हमारे चौक में एक बुजुर्ग बैठे हुक्का पी रहे थे। पास ही दो मिलिट्री के जवान अपनी टोपियाँ उतार कर उनसे खूब बतिया रहे थे। मैंने अंदाजा लगा लिया कि ये मेरे चाचा ही होंगे और कोई नहीं। मैंने उनके बहुत निकट जाकर और झुककर उन्हें 'चाचाजी प्रणाम' कहा तो वे आश्चर्य से कहने लगे, 'कौन है भई ये चाचा वाला?'

'चाचा जी, मैं हूँ मैं, अमर।'

'क्या कहा तू अमर है? जरा इधर आ, कप` ऊपर कर, जरा अपनी पीठ दिखा।'

मैं समझ गया, पीठ पर मेरी पहचान थी। बचपन में आग से जल गया था। मैंने पीठ दिखाई और चाचा ने मुझे पहचान कर तुरंत कहा, 'अमर ! तू कहाँ मर गया था बेटे आज तक। यहाँ क्या-क्या हुआ, क्या-क्या नहीं हुआ, तूने कोई खोज-खबर नहीं ली। क्यों रूठ गया था तू हमसे? देख ये दोनों तेरे भाई हैं। दोनों छुट्टी आये हैं। तुझसे कई वर्ष छोटे हैं।' तभी उन दोनों भाइयों ने मेरी ओर झुक कर जयहिंद कह दिया।

मैंने कहा, 'चाचाजी मैं भटक गया था और अभी भी भटक ही रहा हूँ। मेरी एक छोटी गृहस्थी भी है उसके पच` में प  गया हूँ। वहाँ एक झोप ा बना रहा हूँ। अधूरा ही प ा है। पैसे ही नहीं हैं।

मेंने यह सब इसलिए कहा ताकि मेरे हिस्से-किस्से की ज़मीन-जायदाद के भुगतान का कुछ सिलसिला जम जाय। 'अरे, तू पागल तो नहीं हो गया? यहाँ इतना ब ा पुश्तैनी मकान, ज़मीन-जायदाद आखिर किसका है? तेरा हिस्सा तेरा ही तो है। वहाँ क्यों झोप ा बना रहा है? क्यों नरक में स  रहा है? क्या नहीं है यहाँ? क्या चाहिये तुझे? नौकरी? अरे तू अपनी ज़मीन-जायदाद का मालिक बन। जो मेहनत उधर कर रहा है वह मेहनत इन खेतों में, इन फलदार वृक्षों की देखभाल में लगा। फिर देख तू नौकर नहीं, मालिक बन जायेगा। सामने देख वह बिल्डिंग, नर्सरी से लेकर बारहवीं तक का सरकारी स्कूल है। अपने पीछे देख, पानी का नल जिसमें रात-दिन पानी रहता है। ऊपर नज़र उठा, ये बिजली के तार है, जो तेरे घर में जा रहे हैं। और तेरे यहाँ तो केबल का तार भी गया है। बटन दबा, सैर कर दुनिया की घर में बैठे-बैठे। मेरी बात मान, चार दिन यहाँ ठहर जा, देखभाल ले और वापस चला जा और अपने बाल-बच्चों को यहीं ले आ। क्यों नरक में स  रहा है मूरख?' तब चाचाजी ने सुबेर और कुबेर नाम के मेरे फौजी चचेरे भाइयों को इशारा किया मुझे कमरे तक पहुँचाने का। वे अटैची, झोला पक  कमरे तक आये और मेरी आवभगत में जुट गये। फिर क्या कहूँ, चाची भी आईं, गाँव के आम बुजुर्ग आये, मुझे कोसने लगे कि क्यों नहीं आज तक आया। कुछ युवक आये, बच्चे आये, महिलायें और ग्राम बालायें आईं मुझे देखने जैसे कि प्रायः एक अजनबी को देखने लोग आते हैं। चाय, नाश्ता आया। दोनों चचेरी बहुओं ने घुंघट निकाल कर मुझे प्रणाम किया। रात का

भोजन आया। फौजी भाइयों की बोतल खुली मेरे घर लौट आने की खुशी में। थो ी-सी पीनी प ी - खुशी का मौका जो ठहरा, ना कैसे कहता। फिर सो गया गहरी नींद।

चन्द्रमा को माथे पर रख कर मेरी माँ आसमान से चमकीले फूलों की बरसात करके कहने लगी, 'अमर ! बेटा अमरू, अब मत जाना कहीं। मेरे मरने पर भी नहीं आया। कितना निर्दयी है तू ! मैं कब से तेरी बाट जोह रही हूँ। उधर देख, लाल तारा जो नज़र आ रहा है वे तेरे पिताजी हैं। आजकल मुझ पर नाराज़ हैं। कहते हैं, अमर को शहरों में दर-दर की ठोकर खाने के लिए मैंने ही तुम्हें मज़बूर किया होगा। बहुत दूर चले गये हैं, उन्हें कैसे समझाऊँ? तू अब कहीं मत जाना बेटे। जा, कल ही लौट जा और बच्चों को ले आ।' अचानक मेरी नींद टूट गई। ये कैसा सपना था? मैं रात भर चिन्तन-मनन करने लगा। सुबह हुई, नाश्ता किया, चाचा-चाची से यह कह कर चल प ा कि मैं तुरंत वापस आऊँगा बच्चों को लेकर।

शहर की पुनर्वास कॉलोनी के अपने घर में जैसे ही पहुँचा मेरी पत्नी, सास-ससुर मुझे प्रसन्नचित्त जानकर बहुत आशावान हो गये कि मैं अच्छी रकम लेकर आया हूँ।

मैंने वृत्तांत से तब गाँव-घर के सुखद क्षणों का वर्णन किया और बताया कि वहाँ पर तुरंत चलना है। वे लोग, वह घर, वह मकान, वे खेत, वे फलोद्यान वर्षों से हमारी प्रतीक्षा में हैं। यह सब सुन कर मेरी पत्नी उत्साहित होकर बोली, 'मम्मी, पापा, हम लोग कल ही जा रहे हैं। आप लोग भी यात्रा सीज़न में वहाँ आयेंगे। जरूर आयेंगे। मैं खुद लेने आऊँगी। आप कुछ दिन हमारे घर में मेहमान बन कर रहेंगे।' मेरे सास-ससुर यह सब सुन कर चुप हो गये। एक ओर हमारे लिए बिना माँगे सब कुछ मिल जाने का सुख तो दूसरी ओर उनकी नज़रों से हमारे दूर चले जाने का ग़म - उन्हें रोना-हँसना कुछ भी नहीं आया।

हम ताँगे में बैठ कर अन्तर्राज्यीय बस अड्डे की तरफ जा रहे थे। छोटा बच्चा पत्नी की गोद में था। ब ा वाला मुझे बार-बार पूछ रहा था, 'हम कहाँ जा रहे हैं पापा?'

'हम अपने घर वापस जा रहे हैं बेटे।'

'क्यों? नाना-नानी के साथ ही तो हमारा घर है।'

'नहीं बेटे यह तो नाना-नानी का घर था। हमारा घर तो दूर चंदा मामा जहाँ रहते हैं, जहाँ हिमालय पर्वत चाँदी का मुकुट पहन कर हर समय पहरेदारी करता है, उसी के आस-पास ही हमारा गाँव और हमारा घर है। हम वहीं वापस जा रहे हैं।'

तभी ताँगे वाला चिल्लाया, 'आ गया बाबू बस अड्डा, उतर जाओ।'

हम सब खुशी-खुशी बस में बैठ गये और चल प े अपने घर की ओर।

## यात्रा

### डॉ. दामोदर ख से

घटनाएँ जब झकझोरती हैं
आदमी भीतर तक दहल उठता है
अपने अस्तित्वों के साथ
पिछली गलियों और मुंडेरों पर
छूट जाते हैं उम्र के प ाव
आदमी इन प ावों पर
अपनी घुम ती दुनिया
छू लेना चाहता है
हालात बढ़ा जाते हैं बुनियाद
और कई, कई मो ों से
गुज़रती हुई इमारतें
अपनी ऊँचाई से
नियंता के खेल को
अपने भीतर जीती हैं
इन इमारतों में
बच्चों की किलकारी
यौवन का ऊहापोह
बुझती आँखों का सहारा होता है
ईश्वर की ध कन भीतर होती है
हर यात्रा रह-रह कर
आईना बन जाती है
अपनी ही आँखों से आदमी
अपने बदलते चेहरे का
गवाह बन जाता है।

# आदि शंकराचार्य

डॉ. राम दास चौधरी

आदि शंकराचार्य एक ऐसे युग-पुरुष हैं जिनका आविर्भाव कई शताब्दियों में एक बार होता है। वे बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न थे - सर्वोच्च श्रेणी के विद्वान, दार्शनिक, कवि, समाज सुधारक, व्यवस्थापक तथा भारत की सांस्कृतिक एवं धार्मिक एकता के सूत्रधार। आज जब भारत विखंडनकारी परिस्थितियों के बीच से गुज़र रहा है, तो शंकराचार्य की याद आना स्वाभाविक है। यह लेख शंकराचार्य के सांस्कृतिक एवं धार्मिक एकता के सफल प्रयास के बारे में है। उनका जीवन एक शाश्वत प्रकाश-स्तम्भ है जो आज भी हमारा पथ-प्रदर्शन कर सकता है। हम भारतीय-मूल के प्रवासी भी, जो अलग-अलग ऐसी संस्थाएँ बना रहे हैं, जिनमें विरोधाभास एवं प्रतिद्वन्द्विता है, शंकराचार्य के जीवन से बहुत कुछ सीख सकते हैं।

**ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि** : शंकराचार्य के जीवन-काल से पूर्व की कुछ शताब्दियों पर यदि हम दृष्टिपात करें तो सर्वप्रथम दृष्टिगोचर होता है भारतीय इतिहास का एक स्वर्ण-युग, गुप्त काल (३२०-४८०)। इस काल में आर्यभट्ट तथा वराहमिहिर जैसे वैज्ञानिक तथा गणितज्ञ, कालिदास जैसे कवि तथा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य तथा उनके पुत्र समुद्रगुप्त जैसे प्रतापी राजा थे।

गुप्तकाल में संस्कृत साहित्य का विकास चरमसीमा पर पहुँच गया था। इस काल में महाभारत, भगवद्गीता तथा अन्य पुराणों के नये संस्करणों की रचना हुई। महाभारत-विषय के विद्वान डॉ.सुखान्तर के शब्दों में, यदि महाभारत तथा अन्य पुराणों का संपादन-कार्य इस काल में न हुआ होता तो कदाचित् यह अद्वितीय साहित्य हमेशा के लिए लुप्त हो जाता। गुप्त काल में नालंद विश्वविद्यालय की स्थापना हुई, इसका सर्वांगीण विकास हुआ, और इसकी ख्याति देश-विदेश में फैली। इस काल में कला, वास्तुकला, स्थापत्य कला तथा वाणिज्य के क्षेत्रों में भारत विश्व के अग्रगण्य देशों में था।

इस काल में विदेशियों द्वारा दो मुख्य आक्रमण हुए। पहला आक्रमण था शक-वंश के लोगों का, जिन्हें परास्त करने का श्रेय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य को था। दूसरा आक्रमण हूणों का था, जिन्हें परास्त करने वाले थे चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के प्रपौत्र सम्राट स्कंगगुप्त। इस पराजय के फलस्वरूप, हूण यूरोप की ओर उन्मुख हो गये। शक तथा हूणों के आक्रमण भारतीय धर्म तथा संस्कृति को आहत न कर सके थे, और वे स्वयं इस धर्म और संस्कृति के इतिहास में महत्वपूर्ण मो  लाये - भारत हूणों की बर्बरता का शिकार होने से बच सका, हूणों के आक्रमण ने रोमन साम्राज्य को विच्छिन्न कर दिया।

गुप्त साम्राज्य के अस्त होने पर उत्तरी भारत छोटे-छोटे राज्यों में बँट गया। हिन्दू संस्कृति, हिन्दू परम्परा जीवित तो रही परन्तु उसके उत्कर्ष का आवेग कम हो गया। लगभग सौ साल पश्चात् हर्षवर्धन के राज्यकाल (६०६-६४७) में भारतीय सभ्यता का पुनः अभ्युदय हुआ। महाराजा हर्ष स्वयं उच्च कोटि के विद्वान, कवि तथा नाटककार थे। उनके राज्यकाल में कला, और साहित्य को विशेष प्रश्रय मिला। हर्ष के राज्यासीन होने से पूर्व ही, निरन्तर विदेशी आक्रमणों के फलस्वरूप तक्षशिला विश्वविद्यालय तो धराशायी हो गया था लेकिन नालंद विश्वविद्यालय की कीर्ति सुदूर देशों में थी। हर्षकाल में वहाँ १०,००० से अधिक विद्यार्थी थे, १५१० आचार्य थे। विद्यालय में १०० से अधिक भवन तथा ३ विशाल पुस्तकालय थे। इनके नाम थे रत्नसागर, रत्नबोधि, रत्नरंजक। विश्वविद्यालय में बुद्ध-भिक्षुओं का एक प्रशिक्षण केन्द्र भी था।

**धार्मिक तथा दार्शनिक पृष्ठभूमि** : हिन्दू धर्म विश्व का यदि सबसे प्राचीन धर्म नहीं तो सबसे प्राचीन धर्मों में अवश्य माना जाता है। इस धर्म में आदि काल से धर्म तथा दर्शन का अटूट सम्बन्ध रहा है, वे एक-दूसरे के पूरक रहे हैं। वेद, हिन्दू धर्म तथा भारतीय दर्शन के स्त्रोत हैं। वेदों की रचना के पश्चात् ब्राह्मण-संहिताओं, आरण्यकाओं तथा उपनिषदों की रचना हुई। इस साहित्य में वर्णित कर्मकाण्डों तथा उनकी सार्थकता तथा औचित्य पर जो प्रश्न उठाये गये, उनका हल निकालने के प्रयास ने दर्शन को जन्म दिया। प्रश्न पूछने तथा उनके समाधान पर कोई प्रतिबंध न था, अतः दर्शन की विभिन्न विधाओं का जन्म हुआ। प्रश्न-उत्तर की प्रक्रिया को शास्त्रार्थ की संज्ञा दी गई और यह परम्परा

तब से चली आ रही है। पिछली शताब्दी में स्वामी दयानंद सरस्वती ने इसी प्रणाली से अन्य धर्मों के आचार्यों से शास्त्रार्थ किये थे। इस परम्परा में हार-जीत रक्तपात से नहीं, बुद्धि-कौशल तथा तर्क से होती थी। विद्वान निडर होकर विचारों का आदान-प्रदान एवं आलोचना करते थे। यदि प्रतिद्वंद्वी का सिद्धांत तर्कसंगत सिद्ध हो, तो विरोधी पक्ष उसे स्वीकार करने में संकोच नहीं करता था।

हमारे ऋषि-मुनि धर्माचार्य होने के साथ-साथ उच्च कोटि के दार्शनिक तथा विभिन्न दर्शनों के प्रवर्त्तक भी रहे हैं। भारतीय दर्शन को छः अंगों में विभाजित किया जाता है। ये हैं न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदांत। न्याय के प्रवर्त्तक थे महर्षि गौतम, वैशेषिक के महर्षि कणद, सांख्य के महर्षि कपिल, मीमांसा के महर्षि जैमिनि, योग के पतंजलि तथा अद्वैत-वेदांत के महर्षि बदरायण।

बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव भारत में ही ईसा की छः शताब्दी पूर्व हिन्दू धर्म की कोख से हुआ था। यह एक समाज सुधार का आंदोलन था जिसकी भाषा जनता की भाषा (प्राकृत) थी और इसका प्रमुख उद्देश्य था निरर्थक कर्मकाण्ड का विरोध। प्रारम्भ में इस धर्म के प्रचारक क्षत्रिय-वंश के थे, तत्पश्चात् इसमें अनेक ब्राह्मण भी सम्मिलित हो गये। बौद्ध धर्म के ग्रंथ पहले प्राकृत, फिर पाली में तथा अंत में संस्कृत में रचे गये। कालांतर में, भारतवर्ष में, बुद्ध धर्म हिन्दू धर्म की मुख्य धारा में समाहित हो गया।

पाश्चात्य विद्वानों तथा इतिहासकारों के लिए यह समझने में कठिनाई होती है कि जहाँ सम्राट अशोक ने बौद्ध-धर्म भारत के अतिरिक्त बाहर देशों में भी फैलाया, तथा भारत के अंतिम प्रतापी सम्राट महाराजा हर्ष भी बुद्ध-धर्म के अनुयायी थे, तो फिर उस भारत में बौद्ध-धर्म लुप्त-प्राय कैसे हो गया?

इस के अनेक कारण हैं। प्राचीन काल से लेकर अब तक भारतीय लोग महात्मा बुद्ध को या तो भगवान का एक अवतार मानते हैं या उन्हें एक महान समाज सुधारक की दृष्टि से देखते हैं। भारत में यह मान्यता कभी नहीं रही कि बौद्ध-धर्म हिन्दू-धर्म से भिन्न है। बौद्ध-धर्म को हिन्दू-धर्म का एक सम्प्रदाय माना जाता रहा है। बुद्ध तथा उनके अनुयायिओं को भारत में सदैव सम्मान का स्थान मिला है। अशोक तथा हर्ष जहाँ बौद्ध-धर्म के अनुयायी थे, वे हिन्दू धर्म के अन्य अवतारों तथा देवी-देवताओं के उपासक भी थे। यदि हम शास्त्रार्थ की परम्परा को दृष्टिगत रखें तो यह समझना आसान हो जायेगा कि भारत में हिन्दू तथा बौद्ध-धर्म में कोई वैमनस्य क्यों नहीं रहा। विदेशों में बौद्ध-धर्म एक स्वतंत्र धर्म अवश्य बन गया। इसका प्रधान कारण है भारत की परतंत्रता - जब भारत में ही हिन्दू-धर्म के अनुगमन पर प्रतिबंध लग गये तो भारत के धार्मिक सुधार विदेशों को अनुप्राणित कैसे कर सकते थे। फिर, विदेशों की अपनी विचार-धारायें बौद्ध-धर्म को प्रभावित करती रहीं। यदि भारत में राजनैतिक स्थिरता बनी रहती, भारत विदेशी हमलों से आक्रांत न होता, तो यह संभव था कि भारत में हुये सांस्कृतिक तथा धार्मिक आंदोलन विदेशों में भी प्रभावशील होते।

**प्रारम्भिक जीवन** : आज से लगभग १२०० वर्ष पहले शंकराचार्य का जन्म मलाबार के कलादी गाँव में एक शैव-सम्प्रदाय के नम्बूदरी ब्राह्मण परिवार में हुआ था। यह सर्वमान्य है कि उनका जन्म वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी को हुआ था, परन्तु किस वर्ष हुआ इसके बारे में बहुत मतभेद है। कुछ विद्वानों का मत है कि उनका जन्म ईसा से पाँच सौ वर्ष पूर्व हुआ था, लेकिन अधिकतर इतिहासज्ञ इस मत से सहमत नहीं हैं - प्रोफेसर मैक्समूलर तथा प्रोफेसर मैकडौनल, शंकर का जीवन-काल (७८८-८२०) तथा प्रोफेसर आर. जी. भंडारकर तथा प्रोफेसर हजीमे नाकमूरा (७००-७५०) मानते हैं।

शंकराचार्य के पिता का नाम शिवगुरु तथा माता का नाम आर्यम्बा था। दोनों सात्विक तथा धार्मिक प्रवृत्ति के थे। बचपन में ही पिता का स्वर्गवास हो गया था अतः उनका पालन-पोषण उनकी माता ने ही किया। वे बचपन से ही अत्यंत मेधावी थे। तीन साल की आयु में ही इन्होंने अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त संस्कृत, मगधी तथा प्राकृत भाषायें सीख ली थीं और कई पुराण भी पढ़ लिए थे। पाँच वर्ष की आयु में उनका उपनयन संस्कार तथा गुरुकुल प्रवेश हुआ और आठ साल की आयु में वह वेदों में पारंगत हो गए। गुरुकुल से लौटने के बाद वह कुछ दिन अपनी माता के पास रहे, लेकिन बचपन से ही वैराग्य की तरंगें उनके मन में हिलोरें मारने लगी थीं। वे माता की एकमात्र संतान थे, उनकी तीव्र अभिलाषा थी कि ब` होकर शंकर गृहस्थ जीवन में प्रवेश करें। शंकर ने अपनी माता से संन्यास आश्रम में प्रवेश करने की अनुमति माँगी। अनेक संतों और विद्वानों ने भी माता को समझाया कि इतनी ब ी विभूति का जन्म धर्म के पुनरुत्थान के ही लिए हुआ है, अतः वह शंकर को संन्यास लेने की अनुमति दें। माता की अनुमति तथा आशिर्वाद लेकर ८ वर्ष की आयु में ही शंकर ने संन्यास

धारण कर लिया और गुरु की खोज में निकल गये। उनके गुरु, विख्यात दार्शनिक गौ पाद के शिष्य श्री गोविन्द थे। श्री गोविन्द से उन्होंने अद्वैत-वेदांत की शिक्षा ली।

**शंकराचार्य की महानतम उपलब्धि** : शंकराचार्य ३०० से अधिक पुस्तकों के रचयिता थे। इनमें सबसे अधिक विख्यात हैं उनके गीता तथा उपनिषदों के भाष्य - एवं वेदांत-सूत्र, विवेकचू ामणि। वे उच्च कोटि के कवि तथा दार्शनिक भी थे, परन्तु उनकी सबसे महान उपलब्धि, जो उन्हें युग-युगान्तर तक अमर रखेगी, वह है - भारत को धार्मिक एवं सांस्कृतिक रूप से संबद्ध रखना। अब हम इस पक्ष पर विचार करेंगे।

अधिकांश महान विभूतियों का जीवन-विकास क्रमशः होता है - बाल्यकाल, विद्यार्थी जीवन, गृहस्थ एवं प्रौढ़ जीवन। परंतु यह विभाजन शंकराचार्य के जीवन पर लागू नहीं हो सकता है। ८ वर्ष की आयु में ही शंकराचार्य ज्ञान-विज्ञान में पारंगत हो गये थे, तथा संन्यास ग्रहण कर चुके थे, फिर गुरु गोविन्द की आज्ञा लेकर अपने जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पद-यात्रा पर निकल प े थे।

हर्ष साम्राज्य के अस्त होने के बाद भारत छोटे-छोटे राज्यों में बँट गया था, जिनमें प्रतिस्पर्धा थी तथा दूरदर्शिता की कमी थी। धार्मिक दृष्टि से भी भारत अनेक सम्प्रदायों में बँट गया था। इन सम्प्रदायों में भी फूट थी, सम्प्रदायों में भी उप-सम्प्रदाय थे। उदाहरणतः रामेश्वरम् में शैव सम्प्रदाय छः उप-सम्प्रदायों में विभक्त था - शैव, रौद्र, उग्र, भट्ट, जंगम, पशुपत। धार्मिक कर्मकाण्डों में भी घोर विषमता थी। एक ओर तो निरामिष तथा अहिंसावादी सम्प्रदाय थे, दूसरी ओर उज्जयिनी के कापालिक जो देवी-देवताओं की पूजा के लिए मानव-बलिदान की प्रथा में विश्वास रखते थे। जिन देवताओं की अराधना के लिए यह काम किये जाते थे, वह थे वेद-पुराणों के देवता, ब्रह्मा, बिष्णु, महेश। अहंकार तथा धर्मान्धिता के फलस्वरूप इन सम्प्रदायों के साथ बहुत-सी रूढ़ियाँ, भ्रांतियाँ, कुरीतियाँ, कुसंस्कार तथा दुराचार भी संबद्ध हो गये थे। संक्षेप में भारत में राजनैतिक तथा धार्मिक प्रदूषण था। इस पृष्ठभूमि में शंकराचार्य का आविर्भाव हुआ।

शंकराचार्य भारत की सांस्कृतिक एवं धार्मिक दुर्दशा से अवगत थे। उन्हें इस बात का आभास भी था कि यदि सामाजिक कुरीतियाँ, अंधविश्वास तथा भ्रांतियाँ निष्कासित न की गईं तो वेदों पर आधारित संस्कृति का विनाश हो जायेगा। इससे बचने का एकमात्र मार्ग था, वैदिक धर्म के परिष्कृत रूप - अद्वैत-वेदांत का आख्यान तथा प्रचार। शंकराचार्य ने केवल उपनिषदों के भाष्य लिखना पर्याप्ति न समझा, उन्होंने इनका सशक्त प्रचार भी किया।

वेदांत का मूलमंत्र है, 'तत्वमसि' अर्थात् तुम सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् ईश्वर के अविच्छेद्य अंश हो। यही शाश्वत सत्य है। यदि तुम इस सत्य को नहीं पहचानते हो, तो केवल अविद्या और भ्रांति के कारण। तत्वमसि, सत्य का अंतिम सोपान है। द्वैतवाद का सिद्धांत - प्रकृति एवं पुरुष पृथक हैं, अद्वैतवाद में समाहित है। ब्रह्मा, बिष्णु, महेश आदि देवगण उसी सर्वशक्तिमान् ईश्वर की परिकल्पना हैं, यदि ये तुम्हारे इष्टदेव हैं, तो तुम सही मार्ग पर हो, परन्तु तुम्हारी साधना का अंतिम सोपान अद्वैतवाद ही है। प्रत्येक मानव अपने विशुद्ध रूप में परमात्मा का अंश है, अतः मनुष्य-मनुष्य के भेद-भाव, ऊँच-नीच की भावना निरर्थक है।

शंकराचार्य ने तीन बार भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक पदयात्रा की, पंडितों से शास्त्रार्थ किये। उस समय संस्कृत सभी वर्ग के पंडितों की भाषा थी, अतः शास्त्रार्थ में कोई भाषाई कठिनाई न थी। इन शास्त्रार्थों के फलस्वरूप विभिन्न सम्प्रदायों के प्रमुखों ने अद्वैत-वेदांत की श्रेष्ठता स्वीकार की। इन शास्त्रार्थों का वर्णन उनके शिष्यों द्वारा रचित धर्म-ग्रन्थों में मिलता है। इनमें दो शास्त्रार्थ उल्लेखनीय हैं - काशी के महामंडित मंडन मिश्र से, तथा प्रयाग के कुमारिल भट्ट से। मंडन मिश्र की पत्नी सरसवाणी पहले शास्त्रार्थ समारोह की अध्यक्ष थीं। कई दिन तक यह शास्त्रार्थ चला और मंडन मिश्र ने पराजय स्वीकार की, और वह शंकर के शिष्य बन गये। शंकराचार्य ने बौद्ध-धर्म के तर्क-संगत सिद्धांतों को भी स्वीकार किया और शंकर के आलोचकों ने उन्हें प्रच्छन्न बौद्ध होने की संज्ञा दी।

भारत यात्राओं के दौरान शंकराचार्य ने सामाजिक कुरीतियों तथा धार्मिक कुसंस्कारों के विरुद्ध भी अभियान चलाया तथा भारत के चार कोनों तथा चारों दिशाओं में चार मठों की स्थापना की। ये हैं, उत्तर में बद्रिकाश्रम, दक्षिण में श्रृंगेरी, पश्चिम में द्वारिका, तथा पूर्व में जगन्नाथ पुरी। मठों की महत्ता के बारे में यह परम्परा चली आ रही है कि अपने निवास-स्थान से सबसे दूर मठ की तीर्थ-

यात्रा विशेष कल्याणकारी मानी जाती है। भारत दर्शन तथा भारतीय एकता का इससे ब ा क्या साधन हो सकता है? शंकराचार्य द्वारा स्थापित ये मठ आज भी हिन्दुओं के महत्वपूर्ण तीर्थ-स्थान हैं।

शंकराचार्य ने ३२ वर्ष की आयु में केदारनाथ में अपना नश्वर शरीर त्याग दिया। निःसंदेह, वैदिक धर्म के अभ्युत्थान में शंकराचार्य का स्थान अद्वितीय है। उनका जन्म वैदिक धर्म के पुनरुत्थान तथा संस्थापन के लिए ही हुआ था। आज भी चारों मठों के प्रधान शंकराचार्य के नाम से ही संबोधित किये जाते हैं। गीता में कहा गया है,

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।

और यदि वे व्यक्ति जिनकी गीता पर आस्था है, शंकराचार्य को भगवान का अवतार मानें, तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

## कामना

**सुशील कुमार त्यागी 'अमित'**

ईश्वर हमें बना दो निज चरणों का पुजारी।
बालक 'सुशील' हम सब तव भक्ति के भिखारी।।

पूजा करेंगे मन से वच से करम से भगवन्।
जीवन सफल बनायें इस भाँति देहधारी।।

भावों से मन को भर दो राष्ट्रीयता के विभुवर।
हों देश-प्रेम के ही झरने यहाँ पे जारी।।

दो आत्म-बल सभी को परमेश यह विनय है।
बस कामना यही है संसृति सुखी हो सारी।।

## स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

| | |
|---|---|
| अनमोल हास्य क्षण | ( नाटक-संग्रह ) |
| जीवन के रंग | ( काव्य-संग्रह ) |
| दर्दे-ज़ुबाँ | ( नज़्म व ग़ज़ल संग्रह ) |
| आज का पुरुष | ( कहानी-संग्रह ) |
| जीवन-निधि | ( काव्य-संग्रह ) |
| आत्म-गुंजन | ( आध्यात्मिक-दार्शनिक गीत ) |
| हास-परिहास | ( हास्य कविताएँ ) |
| ज़ज़्बातों का सिलसिला | ( काव्य-संग्रह ) |
| The Galaxy Within | (A collection of English poems) |
| अनुभूतियाँ | ( काव्य-संग्रह ) |
| काव्य-वृष्टि | ( संकलन एवं संपादन ) |
| पूरब-पश्चिम | ( आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह ) |
| बौछार | ( संकलन एवं संपादन ) |
| काव्य हीरक | ( संकलन एवं संपादन ) |
| संजीवनी | ( स्वास्थ्य सम्बन्धी लेख ) |
| उपनिषद् दर्शन | ( अध्यात्मिक ) |
| काव्य-धारा | ( संकलन एवं संपादन ) |
| काव्यांजलि | ( काव्य-संग्रह ) |
| अनोखा साथी | ( कहानी-संग्रह ) |

### प्रकाशक व वितरक


स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि.
४/५ बी., आसफ अली रोड
नई दिल्ली - ११०००२
भारत
Star Publishers' Distributors
55, Warren Street
LONDON – W1T 5NW
England


दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय
पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित